

सहजानंद शास्त्रमाला

# पंचाध्यायी प्रवचन

## भाग 7

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास  
गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

# पञ्चाध्यार्थी प्रवचन

[ सप्तम भाग ]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ धूज्य श्री १०५ धुलक मनोहर जी वर्ण  
‘सहजानन्द’ जी महाराज

ननु सर्वतो नयास्ते किं नामानोथ वा कियन्तश्च ।

कथमिव मिथ्यार्थास्ते कथमिव ते सन्ति सम्यगुपदेश्याः ॥५८॥

नयोंके नाम, प्रकार, नयाभासत्वविधि आदिकी जिज्ञासा—शब्द यहाँ जिज्ञासु नयके सम्बन्धमें बहुत सी बातें जानना चाहता है, उसकी पहिली जिज्ञासा यह है कि समस्तनयोंके नाम क्या क्या होते हैं, याने नय किस किस नाम वाले होते हैं और वे सब नय कितने हैं । यह दूसरी जिज्ञासा है कि वे सब नय कितने हैं । तीसरी जिज्ञासा है कि वे नय किस तरह मिथ्या नयको विषय करते वाले हो जाते हैं और कैसे वे पथार्थ अर्थको विषय करते वाले होते हैं ? पहिली जिज्ञासाका भाव यह है कि नयोंके सम्बन्धमें अभेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक या व्यवहारनयके भेदमें सदभूत असदभूत आदिकरूपके कहा गया है और ऐसी भी घटनियाँ आयी हैं कि इससे भी और अधिक नय होते हैं । तो यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि वह नय किस किस नाम वाला हुआ करता है । नायके बिना विषयका कुछ परिचय नहीं हो पाता, नायके बिना उसका व्यवहार तक भी नहीं हो सकता । इसलिए नायकी जिज्ञासा होना सर्व प्रथम बात है । दूसरी जिज्ञासा यह हुई कि ऐसे नय आखिर होते कितने हैं ? किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें उनकी संख्याकी जानकारी हो तो उससे परिचय स्पष्ट हो जाता है । लौकिक पदार्थोंमें भी पदार्थोंके परिज्ञानके साथ साथ उनकी संख्याका चाहे अंदराजा हो, चाहे बिल्कुल ठीक हो, संख्याका परिज्ञान होता ही है । जैसे जीव पदार्थ का स्वरूप जानने वाले लोग जीवके ठीक स्वरूपका भान तब ही कर पा रहे हैं जब कि उनकी संख्याका भी परिज्ञान है । जीव अनन्तानन्त होते हैं तो अनन्तानन्त रूपसे

अथवा अनेक स्वप्ने जीवकी संख्याका परिज्ञान है तब जीवके स्वरूपका परिचय भी स्पष्ट है। तो वे नय कितने हैं ऐसी उनकी संख्याके परिचयकी जिज्ञासा भी दूत्ति-सञ्चात है। जिज्ञासुकी तीसरी जिज्ञासा यह है कि नय तो प्रायः एक री लक्षण वाले हैं, जो अंशको ग्रहण करे सो नय है, फिर इन नयोंमेंसे कोई नय सम्पूर्ण हो जाता है कोई मिथ्या हो जाता है ऐसी उनमें सभीचीनता और असभीचीनताका कारण क्या है अर्थात् वे सब नय कैसे ठीं न २ कहे जाते हैं और कैसे वे विशुद्ध माने जाते हैं? इन तीन जिज्ञासाओंका समाधान करनेके लिए अब गाथा कहते हैं।

सत्यं यावदनन्ताः सन्ति गुणा वस्तु तो विशेषाख्याः ।  
यावन्तो नयवादा वचोविलासा विकल्पाख्याः ॥५८॥

**नयोंके भौदोंका प्रतिपादन**—इस गाथामें जिज्ञासुकी प्रथम दो जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है। इनमें प्रथम द्वूमरी जिज्ञासाका समाधान जाननेके बाद उनके नामकी जिज्ञासा आसानीसे समाधानमें आ जाती है, वस्तुमें जितने भी गुण हैं उतने ही नयवाद होते हैं। और जितनी भी वचन विवक्षायें हैं वे सब नयवाद ही तो कहलाती हैं इससे समझना चाहिए कि नयोंकी संख्या बंध नहीं सञ्ची स्थूलोंकि प्रत्येक गुणको विषय करने वाला नय अपने आपमें विशेष दृष्टिसे स्वतंत्र है, ऐसे कितने प्रकार नयोंके हो सकते हैं? तो कहना चाहिए कि जितने विस्तारमें गुण हैं उतने ही नय हो सकते हैं, तो गुणोंसे परिज्ञानके आधारपर नयोंकी संख्या बतायी गई है इसी प्रकार वचन विकल्पोंके आधार पर भी नयोंकी संख्या बतायी गई है। कारण यह है कि जो विकल्पात्मक हो सो ही तो नय हो सकता है। विशेष गुणोंका परिज्ञान होना यह भी विकल्प है, भेदीकरण है और वचनके जो विकल्प हैं वे भी विकल्प हैं और भेद रूप हैं। तो यों जितने भी गुण हैं उतने नय हो सकते हैं। और जितने वचनोंकी विवक्षा है उतने नय हो सकते हैं। तब समझ लेना चाहिए कि नय भी उतने ही नाम वाला है। गुणोंका सबका परिचय तो हो नहीं सकता, क्योंकि उनका प्रतिबोध करने वाले वचन भी नहीं हैं केवल ज्ञानीके ज्ञानमें अनन्त गुणोंका प्रतिभास है तो वहाँ वचन नहीं है, निर्विकल्प प्रतिभास है। और जहाँ वचन विकल्प है ऐसे बड़े बड़े ज्ञानियोंके यहाँ भी अनन्त नाम स्पष्ट नहीं हैं। वहाँ भी वचन विकल्प जितने हैं उतनी ही शक्तियोंका परिचय है। जितनी शक्तियोंका ररिचय है उतनी ही वचन विलास है। तो संक्षेपमें इतना समझ लेना चाहिए कि जिस गुणका निर्देश करने वाला जो नय है वह नय उस गुणके नाम वाला बन जाता है। तो कितने नाम कहे जायें? वे सभी नाम कहे नहीं जा सकते और न बोधमें आ सकते। जितने गुण स्पष्टरूपसे परिचयमें है उन गुणोंके नामसे उतने नय कहे जा सकते हैं। यों दो जिज्ञासाओंका समाधान है कि नयोंके वे वे नाम हैं जिन जिनको जय विषय करते हैं।

और दूसरी जिज्ञासाका समाधान यह हुआ कि नय उत्तरे हैं जितने कि वस्तुमें गुण हैं और जितनी वचनकी विवक्षायें हो सकती हैं ।

**अपि निरपेक्षा मिथ्यास्त एव सापेक्षका नयाः सम्यक् ।**

**अविनाभावत्वे सति सामान्य विशेषयोश्च सापेक्षात् ॥५६॥**

निरपेक्ष नयोंमें मिथ्यागतकी व सापेक्ष नयोंमें सम्यक् गतकी घोषणा—  
इम गाथामें जिज्ञासुकी तीसरा जिज्ञासाका समाधान दिया गया है । जिज्ञासा यह थी कि नय कैसे तो मिथ्या अर्थको विषय करने वाला हो जाता है और कैसे यथार्थ पदार्थको विषय करने वाला हो जाता है ? समाधान इसका यह दिया गया है कि जो निरपेक्ष नय है वह मिथ्या होता है और जो सापेक्षनय है वह यथार्थ होता है । ऐसा होनेका कारण यह है कि सामान्य और विशेष इन दोनोंका अविनाभाव है और वस्तु प्रत्येक सामान्य विशेषात्मक होती है । तो सामान्य विशेषात्मक वस्तुमेंसे यदि विशेषको जाना जा रहा है और वह जानना निरपेक्ष कर दिया जाय अर्थात् केवल विशेष ही मात्र रह जाय तो वह मिथ्या हो जायगा, क्योंकि वस्तु मात्र विशेषरूप ही नहीं है, वह सामान्य विशेषात्मक है, इसी प्रकार कोई सामान्यका परिज्ञान करे और इस तरह परिज्ञान करे कि एक सामान्य ही है वस्तुमें यह आग्रह बना लें आरणा संस्कारमें भी यह बोत नहीं होती कि विशेष भी स्वरूप है तब यह नय मिथ्या हो जायगा । तो नय मिथ्या होते हैं तब वह निरपेक्ष बन जाता है । वस्तुमें जिस धर्मका प्रतिपादन किया जा रहा है उसके अन्दर जो अनन्त धर्म हैं उनकी जब अपेक्षा नहीं रहती तो वह कथन मिथ्या हो जाता है । यही इतना स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि तदगुणको कहने वाला नय हो तब वह नय कहलाता है और गुणके नामपर उसका नाम होता है । उनमेंसे निरपेक्ष अवस्थामें वह विवेचन एकान्त रूप पड़ जाता है और अन्य अंशका निषेच बन जाता है और पदार्थ केवल उतना है नहीं जितना कि निरपेक्ष अवस्थामें जाना है । इस कारणसे निरपेक्षनय मिथ्या हो जाता है, क्योंकि वस्तु अनन्त धर्मात्मक हैं उनमेंसे केवल एक धर्ममात्र वस्तुको जाना तो वह सभीचीन ज्ञान नहीं है, इसी कारण वह एकान्त विवेचन है, अथवा एक धर्मका ज्ञान मिथ्या ज्ञान हो जायगा । यदि अन्य धर्मोंकी अपेक्षा रखकर किसी नयका प्रयोग किया जाता हो तो वह सभीचीन प्रयोग है । यह नय सम्यक नय है क्योंकि उस सापेक्षनपने यद्यपि वस्तु के एक अंशको ही कहा लेकिन उस ज्ञाताने पदार्थको उस अंश मात्र ही नहीं समझा है, इस कारण वह नय सापेक्षनय है और सापेक्षनय सम्यक नय हुआ करता है इस तरह तीसरी जिज्ञासाका समाधान यह है कि नय जब अन्य नयोंकी अपेक्षा नहीं रखता है तो वह मिथ्या हो जाता है और अन्य नयोंकी अपेक्षा रखता है तो वह सम्यक हो जाता है ।

सापेक्षत्वं नियमादविनाभावस्त्वनन्यथासिद्धः ।

अविनाभावोपि यथा येन विना जायते न तत्सिद्धिः ॥५८१॥

सामान्य विशेषमें परस्पर सापेक्षता व अविनाभावप्रभा—इष्ट जाग्रत्में यह स्पष्ट किया है कि सामान्य और विशेषमें सापेक्षता किस कारणसे है, यहाँ कारण बताया है कि सामान्य और विशेषमें परस्पर सापेक्षता इस कारण है कि उनमें नियम से अविनाभाव है। सामान्य न हो तो विशेष नहीं ठहर सकता। विशेष न हो तो सामान्य नहीं रहता। जैसे एक मनुष्यमें सामान्य धर्म तो मनुष्यत्व है और विशेष धर्म बालपना, बृद्धपना, जवानी अथवा विद्वान होना, सुन्दर होना, उदार होना आदिक अनेक गुण हों तो यदि सामान्य मनुष्य न हो तो विशेष बातें कहाँ विराजेंगी? कौन जवान बना? मनुष्यत्व तो है नहीं। कौन बालक बना? तो सामान्यका अपलाप करनेपर विशेषका अभाव हो जाता है। और, यदि विशेषका अपलाप किया जाय कि बालक नहीं, जवान नहीं, बृद्ध नहीं तो मनुष्यत्व विराजेगा कहाँ? बच्चा भी नहीं, बड़ा भी नहीं, और मनुष्य है तो ऐपा मनुष्य कोई लाकर दिखाये तो सही तो विशेषके बिना सामान्य सामान्य नहीं हो सकता। तो लो सामान्य और विशेष ये दोनों अविनाभावी बन गए। तो जब इसमें सापेक्षता है तब ही तो यह अविनाभावी हुआ। एकके बिना दूसरा नहीं होता ऐसा जहाँ देखा जाय वहाँ अविनाभाव समझना चाहिए। सामान्यके बिना विशेष सिद्ध नहीं होता और विशेषके बिना सामान्य सिद्ध नहीं होता, इस कारण यह बात युक्तिसङ्गत है कि इन दोनोंमें अविनाभाव है परस्पर अविनाभाव होनेके कारण ही दोनोंमें सापेक्षता है। तो जब सामान्य और विशेषमें सापेक्षता है तो इसमें सो कोई एक निरपेक्ष रूपसे सामान्यको ही जाने तो वह सम्यक कैसे हो सकता है? अथवा अन्य दूसरे धर्मको जाने तो निरपेक्ष होकर जाननेसे तो मिथ्यानय बनता और सापेक्षताकी पद्धतिसे जाननेपर वह सम्यकनय हो जाता है। इस प्रकार जिज्ञासुकी तीसरी जिज्ञासाका समाधान दिया गया है।

अस्त्युक्तो यस्य सतो यन्नामा यो गुणो विशेषात्मा ।

तत्पर्यायविशिष्टास्तत्त्वमानो नया यथान्नायात् ॥५८२॥

नयोंके विषयभूत तत्त्वोंके नामपर नयोंके नामका निर्देशन—नयोंके क्या नाम होते हैं इस सम्बन्धमें इस गाथामें सकेत दिया है। आचार्य कहते हैं कि जिस द्रव्यका जिस नाम वाला कोई विशेष गुण कहा जाता है उस गुणकी पर्यायोंसे विशिष्ट और उस गुणको विषय करने वाला नय भी नयके नामसे कहा जाता है, अर्थात् जितने गुण पदार्थमें विवक्षित किए जाते हैं वे जिस जिस नाम वाले हैं उनको प्रतिपादन करने वाला अथवा जानने वाला नय उन्हीं नामोंसे पुकारा जाता है। इस

गाथामें नयोंके नामकी कुञ्जी दिखाई गई है। जो विषय हो उसका जो नाम हो उसी विषयके आगे नय शब्द और जोड़ देनेपर उस नयका पूरा नाम हो जाता है। अब तक जितने नयोंके प्रयोग किए गए हैं उनमें यही कुञ्जी अपनाई गई है। व्यवहार कहते हैं भेद करनेको। भेद करनेकी बात जिस नयके विषयमें आयी है उस नयका नाम व्यवहारनय हो गया। पर्याय कहते हैं अंशको। पदार्थके अंशको विषय करने वाला जो नय है उसे पर्यायाधिकनय कहते हैं। द्रव्य कहते हैं उस समस्त गुण पर्यायों के विण्डको उप द्रव्यको जो विषय करता है उसको द्रव्याधिकनय कहते हैं। तो अब तक जितने नयोंके नाम निकले हैं उन नामोंसे भी यही प्रकट होता है कि नय जिसको विषय करते हैं उनके नानपर ही नयोंके नाम रखे गए हैं। बस यही कुञ्जी समस्त नयोंके सम्बन्धमें लगेगी।

**अस्तित्वं नाम गुणः स्यादिति साधारणः सतस्तस्य ।**

**तत्पर्यायश्च नयः समासतोस्तित्वनय इति वा ॥५६३॥**

नयोंके नामकरणकी पद्धतिका एक दृष्टान्त—नयोंके नाम विषयोंके नाम पर रखे जाते हैं इस बातको दृष्टान्त पूर्वक इस गाथामें दिखाया है। जैसे द्रव्यमें अस्तित्व नामका एक गुण है उस गुणको विषय करने वाले नयका भी नाम अस्तित्व नय कहा जाता है, द्रव्यमें जो ६ साधारण गुण हैं उनमें प्रथम गुण अस्तित्व है। अस्तित्व गुण उसे कहते हैं जिस शक्तिसे पदार्थका अस्तित्व कायम रहे। यद्यपि पदार्थ में अस्तित्व गुण निराला करके नहीं है। जो अस्तित्व गुण पदार्थका अस्तित्व कायम रखता हो, पर पदार्थ ही स्वयं इस रूप है इस ही बातका भेद करके अस्तित्व गुणके नामसे बताया गया है, तो ऐसे अस्तित्व गुणको जो कि एक साधारण गुण है उसको विषय करने वाला जो नय है उस नयका नाम अस्तित्वनय कहलाता है। इस कुञ्जी के अनुसार अस्तित्व गुणको विषय करने वाले नयका नाम अस्तित्वनय कहो है। इसी प्रकार अन्य नयोंके नाम भी समझना चाहिए। उसके लिए कुछ और भी दृष्टान्त दे रहे हैं।

**कर्तृत्वं जीवगुणोस्त्वश्च वैभाविकोऽथवा भावः**

**तत्पर्यायविशिष्टः कर्तृत्वनयो यथा नाम ॥५६४॥**

नयोंके नामकरणकी पद्धतिका द्वितीय दृष्टान्त—जीवमें एक कर्तृत्व गुण है अथवा कहो, वह कर्तृत्व नामक विभाव वैभाविक भाव है। उस कर्तृत्व पर्यायिको विषय करने वाला जो नय है उस नयका नाम वर्तुत्वनय कहलाता है। कर्तृत्वको दो दृष्टियोंसे परखना चाहिए एक तो यह कि जो भी पदार्थ होते हैं वे

प्रतिक्षण किसी न किसी रूपसे परिणामते ही रहते हैं। परिणामन बिना किसी भी क्षण पदार्थ नहीं रहता है, तब इस ही परिणामन करने वालेको उस परिणामनका कर्ता कहा जाता है। तो ऐसा कर्तृत्व सभी पदार्थोंमें पाया जाता है। और सभी अवस्थाओंमें यह कर्तृत्व होता है लेकिन जब किसीको गृह असङ्गोष्ठ होता कि पदार्थ है, उसका परिणामनेका स्वभाव है, परिणामता रहता है उसमें कर्तापिनकी क्या बात आयी? कर्तापिन तो वहाँ समझते आता है जहाँ कोई जीव कुछ बल लगाकर कुछ बुद्धि लगाकर या श्रम करके करता हो किसी पदार्थमें कुछ वहाँ कर्ता नामसे व्यवहार होता है। तो इस दृष्टिसे यह दूसरा प्रकार मुनो! दूने प्रकारमें यह तो न होगा कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको कर देता हो, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपने आपमें स्वतत्र है, किन्तु जीव इव्यथमें यह देखा जायगा कि यह सन्सारी प्राणी घर मकान आदिको तो नहीं करता, यह तो बात ठीक है, पर उसमें जो क्रोध, मान, माया, लोभ विकल्प तरज्जु आदिक उठ रहे हैं ऐसा परिणामन होता। इस वस्तुके स्वभावमें तो नहीं है। जीव तो ज्ञान शक्तिरूप है, चैतन्य स्वभाववान है, उसमें क्रोधादिक विकारों का अवकाश नहीं है स्वभावमें यदि विकार हो तो विकार ही स्वभाव बन गया, और वे कभी फिर क्लूट न सकेंगे। तो ये विकार आत्माकी शक्तियोंमें नहीं हैं फिर भी उपाधिका निमित्त पाकर इनमें विकाररूप परिणामन होता है। इस स्थितिमें इस जीव को विकारका कर्ता कहा जाता है। और तब कहना कि जीवमें क्रोध कर्तृत्व है मान कर्तृत्व है, इस तरहकी पर्यायोंको जो विष। करे ऐसे नयका नाम है कर्तृत्वनय। इस नयने यह बताया है कि यह जीव विकार भावका कर्ता है। अथवा जो विकल्प विचार उत्पन्न होते हैं उनका कर्ता है। यह पर्याधिकनयकी बात है। जिसमें निश्चयनय यह झलक देता है कि परमार्थतः ऐसा नहीं है। तो इस प्रकार एक कर्तृत्व पर्यायको जो विषय करे उस नयका नाम कर्तृत्व नय है इसमें भी वही कुञ्जी। आयी कि जो नय जिस प्रकारके तत्त्वको विषय करता है उस तत्त्वका जो नाम रखा गया हो उस ही प्रकारका नाम उस नयका रखा जाता है।

**अनया परिहाट्या किल नयचक्रं यावदस्ति त्रोद्धव्यम् ।**

**एकैकं धर्मं प्रति नयोषि चैकेकं एव भवति यतः ॥५४५॥**

नयोंके नामकरणकी पद्धतिसे शेष नयोंके नामकरणकी शक्यता और उनकी गणनाका बीजभूत कथन—नयोंके नामकी जो पद्धति बतायी गई है उस पद्धतिसे सभी नयोंके सम्बन्धमें बात जान लेना चाहिए। इसका कारण यह है कि एक एक धर्मके प्रतिनय भी एक एक है। जितने वस्तुमें धर्म हैं, अंश हैं उतने रूपसे पर्यायरूपसे उन सब अंशोंको जान सकने वाला नय भी होता है तब जितने धर्म हैं। अंश हैं नय उतने कहलायेंगे और जो जो नाम उन अंशोंके प्रसिद्ध हुए उन्हीं उन्हीं

नामोंसे नयोंके नाम भी बन जायेंगे । जैसे पदार्थमें ज्ञान गुण है तो ज्ञान गुणको समझाने वाला जो नय है उसको नाम ज्ञाननय है । आत्मामें एक दर्शन शक्ति भी है, उसको समझाने वाला जो नय है उसका नाम दर्शननय है । तो जितने भी बस्तुमें अंश हैं, भेद हैं, पर्याय हैं उतने ही नय हुआ कहते हैं । हमें उन समस्त अंशोंका धोष नहीं है और न उनका नाम प्रसिद्ध है पर वे अंश हैं और उनका जानना बनेगा तो उनके भी नयका विकास है उस समयमें और जिन शब्दोंमें उनका नाम होगा उन्हीं शब्दोंमें नयोंका भी नाम होगा । इस तरह यह सिद्ध होता है कि नय उतने हैं जितने कि पदार्थमें धर्म हैं अथवा वचनकी विवक्षायें हैं और उन नयोंके नाम वे ही हैं जो नाम नयके विषयभूत तत्त्वोंके हैं ।

**सोदाहरणो यावान्नयो दिशेषणविशेष्यरूपः स्यात् ।**

**व्यवहारापरनामा पर्यायार्थो नयो न द्रव्यार्थः ॥५६६॥**

**सोदाहरण व विशेषण विशेष्य भावरूप नयोंकी व्यवहारनयरूपता—**  
उक्त गाथामें सकेतमें बताये गए विषयको और भी स्पष्ट रूपसे इस गाथामें कहा है : जितने भी उदाहरण सहितनय हैं और जितने भी दिशेषण विशेष्य वाले नय हैं उन सबको व्यवहार करते हैं । जिसका दूसरा नाम पर्यायार्थिकनय भी है । उसको व्यवहारनय कहा अर्थात् पर्यायार्थिकनय कहा । उसे द्रव्यार्थिकनय नहीं कह सकते हैं । पदार्थके बहुत गहरे अन्तरङ्गमें जाकर भी कुछ प्रतिपादन यदि हो रहा है, कुछ विकल्प से समझा जा रहा है किसी भेदको तो उसको विषय करने वाला नय पर्यायार्थिकनय होगा द्रव्यार्थिकनय न होगा, क्योंकि जो कुछ भी भेद विवक्षासे कहा जाता है वह सब व्यवहारनय है अथवा पर्यायनय है । द्रव्यके समझनेके लिए किन्हीं भी शब्दोंमें कुछ कहा जाय वह सब प्रतिपादन व्यवहारनय होगा । द्रव्यार्थिकनय तो उन व्यवहारनयोंही समझे दृष्टिमें आता है । जो कुछ द्रव्यार्थिकनयका विषय है और उसकी अपेक्षा रखता हुआ व्यवहारनय सम्यक कहलाता है, पर व्यवहारनयके शब्दोंमें जो कुछ विषय आ रहा है वह द्रव्यार्थिकनयका विषय नहीं है ।

**ननु चोक्तलक्षण इति यदि न द्रव्यार्थिको नयो नियमात् ।**

**कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्ठास्तचिन्हमाहुराचार्याः ॥५६७॥**

**समस्त विवेचनोंकी व्यवहाररूपता प्रसिद्ध होनेपर निश्चयनयके स्वरूपकी जिज्ञासा—**शङ्खाकार यहाँ प्रश्न करता है कि यदि उदाहरण सहितनय है या विनेषण विशेष्य रूप नय द्रव्यार्थिकनय नहीं है तो फिर द्रव्यार्थिकनय क्या कहलायेगा, इसका समाधान करेंगे ? शङ्खाकारका यह अभिप्राय है कि उदाहरण सहित

बताये जाने वाले कथनको व्यवहारनय कहेंगे । तो द्रव्याधिकनयके विषयको भी जब स्पष्ट किया जाता है और उदाहरण दिया जाता है ऐसी स्थितिमें भी उसे व्यवहारनय बता दे । तब फिर द्रव्याधिकनय क्या होगा ? इसी तरह विशेषण विशेष्यरूप रागादिक हैं, परिचय है उसे भी द्रव्याधिकनय बता दिया तो द्रव्याधिकनयके विषय को उन्हीं शब्दोंमें ही तो कहेंगे । जैसे कहा जीव ज्ञानमय है । तो जीव हो गया विशेष्य ज्ञानमय हो गया विशेषण । अब भी प्रतिपादन करेंगे तो वहाँ विशेष्य विशेषण भावकी प्रक्रिया तो बनती ही है । अब अन्तरङ्ग विषय वाले द्रव्यको भी कहेंगे तो वहाँ भी विशेष्य विशेषणकी पद्धति आ ही जायगी । और, यहाँ यह प्रतिज्ञा सी कर दी गई है कि जितने भी विशेष्य विशेषण रूप नय हैं वे सब व्यवहारनय हैं अथवा पर्यायनय हैं तब फिर यह बतलाभ्रो कि द्रव्याधिकनय कौन सा हो ? शङ्खाकारकी इस जिज्ञासामें तत्त्वके प्रति प्रेम जाहिर हो रहा है । द्रव्याधिकनयका जो विषय होता है वह इसकी भलकमें आया है तभी उसे लक्ष्यमें लेकर पूछ रहा है । द्रव्याधिकनय यदि हृन सब नयोंमें नहीं आता या प्रतिपादनमें नहीं आता तब फिर वह नय होता क्या है ? इसका समाधान जिज्ञासुने स्वहितके लिए प्राप्त करना जाहा । अब आचार्यदेव इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिए द्रव्याधिकनयका स्वरूप कहते हैं ।

**व्यवहारः प्रतिषेध्यस्तस्य पूर्तिषेधकश्च परमार्थः ।**

**व्यवहारपूर्तिषेधः स एव निश्चयनयस्य वाच्यः स्यात् ॥५६८॥**

निश्चयनयका स्वरूप—व्यवहारनय तो प्रतिषेध्य है और परमार्थ उसका प्रतिषेधक है अर्थात् व्यवहारनयने जो कुछ कहा उसके निषेध करने वाला निश्चयनय तब समझ लेना चाहिए कि निश्चयनयका विषय अथवा वाच्य व्यवहारनयका प्रतिषेध करता है । व्यवहार सारी व्यवस्थायें जमा रहा है, सब कुछ प्रतिपादन कर रहा है । श्रात्मतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ जाहिरात भी कर रहा है तब निश्चयनय केवल एक इस घुनमें है कि वह सबका ना कर जाय, यह भी नहीं, तो व्यवहारका प्रतिबोध करना ही निश्चयनयका वाच्य होता है । और इस कारण यह कथन समीचीन है कि व्यवहार तो प्रतिषेध्य है और परमार्थ उसका प्रतिषेधक है, अब इसी विषयका स्पष्टीकरण करनेके लिए कुछ दृष्टान्त दिए जायेंगे, जिन दृष्टान्तोंसे यह विदित होगा कि परमार्थ तत्त्व ग्रवक्तव्य है और परमार्थ तत्त्वकी दृष्टि करने वाला नय निश्चयनय है । ऐसा निश्चयनय सर्व व्यवहारका प्रतिषेध करने वाला हो रहा है । इस दृष्टिमें यह बात समार्थी हुई है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है वह यथार्थ नहीं है । व्यवहारनयने पदार्थमें भेद किया तो निश्चयनय कहता है कि भेद नहीं है । अंशको ग्रहण किया तो निश्चयनय कहता है कि अंश परमार्थभूत नहीं है । इस प्रकार द्रव्याधिकनय के कुछ उदाहरण दिए जायेंगे ।

**व्यवहारः स यथा स्यात्सद्दृष्ट्यां ज्ञानवांश्च जीवो वा ।  
नेत्येतावन्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपतिः ॥५६६॥**

निश्चयनयके विषयका स्पष्टीकरण—उक्त गाथामें यह बताया था कि व्यवहार प्रतिषेध है और उसका प्रतिषेधक परमार्थ है सो व्यवहारका प्रतिषेध होना ही निश्चयनयका बाच्य है । इंस कथनसे यह घटनित किया गया है कि जो कुछ व्यवहारनयसे कहा जाता है वह सब हेय है, निषेध है । उसका कारण यही हो सकता है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है वह पदार्थका स्वरूप नहीं है । पदार्थ तो अखण्ड है, अभिन्न है और इसी कारण अवक्तव्य है किन्तु व्यवहारनय उसका भेद बतलाता है । पदार्थ तो अनन्त गुणात्मक अखण्ड तत्त्व है परन्तु किसी विवक्षित गुणके माध्यम से व्यवहारनय उसका विवेचन करता है । तो यहाँ यह ध्यानमें आता चाहिए कि परमार्थका विषय और व्यवहारनयका विषय परस्पर विरुद्ध हैं फिर भी पदार्थमें अविरोध है । यही तो सगदादकी खूबी है कि परस्पर विरुद्ध धर्मोंको एक पदार्थमें अवस्थित बताना । पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है किन्तु उसमेंसे सामान्यका या विशेष अंशका ग्रहण करे सो व्यवहारनय है । तब समझना चाहिए कि व्यवहारनयका यह अंश है । केवल सामान्य है क्या, केवल विशेष है क्या ? वह सब निषेध करनेके योग्य है, तो व्यवहारसे व्यवहारनयका निषेध निश्चयनयका विषय है । जिसे यों समझिये कि व्यवहारनय गुण गुणीमें भेद बतलाता है तो निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है । भेद नहीं है, तो निश्चयनयका बाच्य अर्थ यही हुआ कि व्यवहारमें जो कुछ विषय आया उसका निषेध करे ।

निश्चयनयके विषयके दो उदाहरण—निश्चयनयके विषयको दृष्टान्त द्वारा इस गाथामें बताया है कि जैसे व्यवहारनय यह विवेचन करता है कि अथवा जानता है कि द्रव्य सत्त्वरूप है, तब निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है । उसका कारण यह है कि सत्त्वरूप कहनेसे एक सत्त्व गुणका बोध हुआ । पदार्थमें जो अस्तित्व गुण है उसकी प्रमुखतासे कहा गया किन्तु पदार्थ केवल अस्तित्व गुणमय ही हो ऐसा तो नहीं है, किन्तु अनन्त गुणात्मक है । इस कारण पदार्थको सत्त्वरूप कहना ठीक नहीं है ऐसा निश्चयनयसे जाताया तब व्यवहारनयकी बातका निषेध निश्चयके द्वारा हुआ अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिए व्यवहारनयने यह विवेचन किया कि जीव ज्ञानवान है । निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है । तो यहाँ जीवको ज्ञानवान कहलाना यह भी तो व्यवहारनयका विषय है । निश्चयनयने इसका निषेध किया अर्थात् जीव ऐसा नहीं है । व्यवहारनय जैसे कहता है कि जीव ज्ञानवान है तो निश्चयनयके विषयमें क्यों नहीं है ऐसा ? यों नहीं है कि जीव अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड है । के अनन्त गुण अभिन्न प्रदेशी हैं । तो वह पदार्थ अभिन्न रहा । अब ऐसे उम अखण्ड

पदार्थमें गुण गुणीका भेद करना मिथ्या है। कैसे वहाँ ज्ञान अलग हुआ, जीव अलग हुआ और फिर जीव ज्ञानवाला है इस तरह बनाया जाय? वहाँ तो जीव ही उस स्पृष्ट है जैसा निश्चयनयने देखा, पर कथनमें कहनेपर भेद आ ही जाता है। तब व्यवहारनयका जो विषय है, भेद है उसका निषेध निश्चयनयके द्वारा हुआ। मर्ही ही समझिये कि जितना भी विवेचन है प्रतिपादन है वह सब अंशरूप होगा, इसी कारण वह मिथ्या है। उस परमार्थ स्वरूपके सम्बन्धमें निश्चयनय कुछ नहीं कहता, केवल व्यवहारनयकी कही हुई बातका निषेध करता है।

**व्यवहारका परमार्थ प्रतिबोधनमें प्रयास**—यहाँ यह न समझा चाहिए कि निश्चयनयने व्यवहारनयका निषेध किया तो व्यवहारनय मिथ्या ही कहता होगा सो भी एकान्त नहीं है। व्यवहारनय निश्चयनयके विषयको समझानेका भरसक प्रयास करता है। तो उसका प्रयास निश्चयनयके विषयके लिए हो रहा है, अतएव उसे एकान्ततः अथार्थ नहीं कह सकते, अतएव प्रतिपादन ही यथार्थ नहीं हो पाता। दूसरी बात ऐसी भी जिज्ञासा हो सकती है कि जब निश्चयनय केवल निषेध ही करता है तो यह बतलायें कि कि निश्चयनयने क्या कहा? और निश्चयनयका विषय क्या समझा जाय? उत्तर तो प्रसङ्गमें स्पष्ट है। जो ही निश्चयनयका विषय है। और, इस विषयसे यही घटनित होता है कि पदार्थ अवक्तव्य स्वरूप है और पदार्थ अवक्तव्य है। इन शब्दोंमें भी प्रतिपादन हुआ। ऐसा प्रतिपादन भी परमार्थनयको स्वीकार नहीं करता। पदार्थकी अवक्तव्यताका वर्णन भी तो वक्तव्य बन गया। तो ऐसा कोई सोच सकता था कि व्यवहारनय तो भेद करनेकी बात कहे और निश्चयनय उसे अवक्तव्य बता दे तो इतना भी बताना वक्तव्यपनेका सूचक बना, प्रतिपादन हुआ। किसी अंशमें भेद बना तो यह भी परमार्थसे स्वीकार नहीं है। अवक्तव्य है निश्चय, इसकी सूचना निषेधसे स्वयं हो जाती है। यों यह सिद्ध हुआ कि निश्चयनयका विषय व्यवहार निषेध है, और इसी प्रसङ्गमें यह भी जान लेना चाहिए कि निश्चयनय नयों का अधिपति है, इससे आगे और नय विकल्पका अवकाश नहीं है।

**नतु चोक्तं लक्षणमिह नयोस्ति सर्वोपि किल विकल्पात्मा ।  
तदिहं विकल्पाभावात् कथमस्य नयत्वमिदमिति चेत् ॥६००॥**

सर्व विवेचनोंकी व्यवहारनयरूपता सिद्ध होनेपर निश्चयनयमें नय लक्षणत्वके अभावकी शंका—शङ्काकार कहता है कि पहले तो यह विवेचन किया गया था कि द्रव्यनय विकल्पात्मक होता है अर्थात् नयोंका लक्षण ही विकल्प बताया था, लेकिन द्रव्याधिकनयका जो स्वरूप कहा जा रहा है अथवा निश्चयनयका जो विषय बताया जा रहा है उस प्रतिपादनसे तो यह स्पष्ट होता है कि इसमें विकल्प

तो कुछ पड़ ही नहीं रहा, क्योंकि निश्चयनयने तो केवल निषेध किया । विकल्प कुछ आया ही नहीं । तो जब निश्चयनयमें विकल्प न आया तो उसको नय कैसे कह दिया जायगा ? नयका जो लक्षण किया गया वह लक्षण घटित हो तब उसको नय कहना चाहिए । अब विकल्प निश्चयनयमें बता नहीं रहे तो निश्चयनयको नय न कहा जा सकेगा । अब इस शङ्खाके समाचारमें कहते हैं ।

**तत्र यतोस्ति नयत्वं नेति यथा लक्षितस्य पक्षत्वात् ।**

**पक्षग्राही च नयः पक्षस्य विकल्पमात्रत्वात् ॥६०१॥**

निश्चयनयके विषयका प्रतिपादन – आचार्यदेव कहते हैं कि उक्त शङ्खाकारकी शङ्खा संगत नहीं है अर्थात् निश्चयनय विकल्पत्मक नहीं है ऐसी उसकी दृष्टि अभी आन्त है । क्योंकि निश्चयनयमें भी तो नहीं यह विकल्प आ रहा है, सो पहिले बताया ही गया कि निश्चयनयका वाच्य नहीं अर्थात् निषेध है । सो यह निषेध ही उसका एक पक्ष है । और पक्षका ग्राहक ही नय होता है और पक्ष ही विकल्पात्मक होता है । सो पहिले नयका लक्षण विकल्प बताया ही था । यहाँ निश्चयनयमें निषेध रूप विकल्प पड़ा है । जो किसी पक्षको ग्रहण करे ऐसे ज्ञानको अथवा उसका प्रतिपदन करने वाले वचनको नय कहते हैं, तो व्यवहारनयमें तो नाना भेद विषय पड़े किन्तु निश्चयनय उस निषेधरूप पक्ष हीं ग्रहणमें आया तो निषेध पक्ष तो आया वही निश्चयनयका विकल्प है । तो जैसे व्यवहारनय किसी भेदका धर्मका प्रतिपादन करने से विकल्पात्मक है यों ही निश्चयनय व्यवहारनयके विषयभूत पदार्थका निषेध बता रहा है सो वह भी विकल्पात्मक है । तो विकल्पात्मकपना लक्षण जैसे व्यवहारनय में घटित होता है उसी प्रकार निव्यवहारनयमें भी घटित होता है । इस विषयको और भी सुनो ।

**प्रतिषेध्यो विधिरूपो भवति विकल्पः स्वम् विकल्पत्वात् ।**

**प्रतिषेधको विकल्पो भवति तथा सः स्वयं निषेधात्मा ॥६०२॥**

विधिरूप प्रतिषेध व्यवहारनयकी विकल्परूपताकी तरह प्रतिषेधक निश्चयनयकी भी निषेधमय विकल्परूपता – जिस प्रकार व्यवहारनयका विषय प्रतिषेध कहा गया है वह विधिरूप विकल्प है स्पष्ट विकल्पात्मक होनेसे उसके विकल्पात्मकपनमें सन्देह नहीं किया जा रहा इस ही प्रकार प्रतिषेधक जो रूप है निषेधात्मक जो आशय है वह भी विकल्परूप है । इन दो नयोंके प्रसङ्गमें ये ही दो तत्त्व आये कि प्रतिषेध और प्रतिषेधक ये दो प्रकारके नय हैं । तो प्रतिषेधमें तो नाना विधिरूपताका पक्ष पड़ा है और प्रतिषेधकमें निषेधरूप पक्ष पड़ा है तो किसी

पक्षको ग्रहण करे जसी तो नय कहते हैं तो यों व्यवहारनय भी नय है और विकल्पात्मक है इसी प्रकार निश्चयनय भी विकल्पात्मक है अतएव नय है ।

**स्वदुष्टाद्यमयि च यथा स्यादुपयोगो दिक्कल्प एवेति ।**

**अर्थानुपयोगः किल वाचक इह निर्विकल्पस्य ॥६०३॥**

**अर्थाकृतिपरिणमनं ज्ञानस्य स्यात् किलोपयोग इति ।**

**नार्थाकृतिपरिणमनं तस्य स्यादनुपयोग एवयथा ॥६०४॥**

**नेति निषेधात्मा यो नानुपयोगः सबोधपत्त्वात् ।**

**अर्थाकारेण विना नेतिनिषेधावशोधशून्यत्वात् ॥६०५॥**

प्रतिषेध्य और प्रतिषेवक् दोनों नयोंकी विकल्पात्मकताका स्पष्टीकरण—उक्त प्रसङ्गमें यह बताया गया था कि व्यवहारनय प्रतिषेध्य है, निश्चयनय प्रतिषेवक है और दोनों ही विकल्पात्मक हैं । इसमें व्यवहारनय प्रतिषेध्य है और विकल्पात्मक है । इस सम्बन्धमें कोई शङ्खा नहीं की गई किन्तु प्रतिषेवक निश्चयनय विकल्पात्मक कैसे हो गया ? यह शङ्खा उठायी गई थी । और उसका समाधान यह दिया गया कि प्रतिषेवक नय भी विकल्पात्मक है इस ही भावको इन श्लोकों द्वारा स्पष्ट किया जाता है । देखिये ! पदार्थका उपयोग हो उसीको तो विकल्प कहते हैं । विकल्पका अर्थ क्या है ? किसी पदार्थका ग्रहण होना, उपयोग होना यही तो विकल्प है और पदार्थका उपयोग न हो अनुपयोग रहे उसे निविकल्प कहते हैं । तब यहाँ यह निर्णय कर लीजिए कि वह उपयोग क्या है ? ज्ञानका पदार्थकार परिणमन होना यही तो उपयोग कहलाता है । और जब ज्ञानका अर्थकार परिणमन न हो, उसमें किसी पदार्थका ग्रहण न आये तो वह अनुपयोग कहलाता है । तो उपयोग और अनुपयोग कहलाता है । तो उपयोग और अनुपयोगकी ऐसी स्थिति है । अब यहाँ यह परख लीजिए ! जैसे व्यवहारनयका विषय उपयोगरूप है, वहाँ अर्थान्नारका विकल्प है तो यहाँ निश्चयनयका निषेधात्मक त्रोध है और वह निषेवक ज्ञान भी एक पक्ष है तो निश्चयनयमें प्रतिषेवका ग्रहण किया । तो यों निश्चयनयको अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह भी उपयोग ही है । उपयोग उसे कहते हैं जिस ज्ञानमें पदार्थकार परिणमन हो । तो निश्चयमें अगर निषेधात्मक रूपसे अर्थात् काल परिणमन न होता तो निषेधात्मक ज्ञान भी न हो सकता था, पर होता रहता है निश्चयनयके निषेवका ज्ञान । तो यही तिद्धि करते हैं कि निश्चयनय भी उपयोगात्मक है और उपयोगको ही विकल्प कहते हैं । यों यह सिद्ध हुआ कि व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी

विकल्पात्मक होता है ।

**जीवो ज्ञानगुणः स्यादर्थालोकं बिना नयो नासौ ।**

**नेति निषेधात्मत्वद्दर्थालोकं बिना नयो नासौ ॥६०६॥**

अर्थानोकके बिना प्रतिषेध्य व प्रतिषेधक दोनों नयोंकी उपरत्ति न होनेसे विकल्पात्मकताकी सिद्धि - व्यवहारनयके समान निश्चयनय भी विकल्पात्मक है इस बातका दृष्टान्त इस गाथामें दिया गया है । जिस प्रकार व्यवहारनय यह कहता है कि जीव ज्ञानगुण वाला है तो ऐसे कथनमें यह बात ज्ञात हुई कि यह नय पदार्थको विषय किए बिना नहीं हुमा । इसमें अर्थालोक पड़ा हुआ है । अर्थालोकका अर्थ यह है कि पदार्थका ज्ञान होना । तो जैसे व्यवहारनयमें भर्थालोक है, अर्थ प्रकाश के बिना व्यवहारनयकी प्रबृत्ति नहीं है उसी प्रकार निश्चयनयका विषय है निषेध अर्थात् ऐसा नहीं है इस प्रकारका प्रतिषेधक नय निषेधको विषय करने वाला होता है । तो उसका विषय निषेध हुमा । निषेधलृप पदार्थका परिज्ञान हुआ तो निश्चयनय भी अर्थालोकके बिना नहीं होता । नात्यर्थ यह है कि जैसे विषय बोध व्यवहारनयमें है उसी प्रकार विषय बोध निश्चयनयमें भी है, और विषय बोध होनेने विकल्पात्मक हुमा और विकल्पात्मक होनेसे नयका लक्षण निश्चयनयमें भी घटित हो गया । अतः निश्चयनयको नयके लक्षणसे वहिर्भूत नहीं मान सकते ।

**स यथा शक्तिविशेषं समीक्ष्य पञ्चशिवदात्मको जीवः ।**

**न तथेत्यपि पक्षः स्यादभिन्नदेशादिकं समीक्ष्य पुनः ॥६०७॥**

प्रतिषेध्य और प्रतिषेधक दोनों नयोंमें पक्षग्राहिताकी समानता— निश्चयनयको विकल्पात्मक सिद्ध करनेके लिए उक्त गाथामें जो उदाहरण बताया है उसीका स्पष्टीकरण इस गाथामें किया जा रहा है । जीव ज्ञानगुण वाला है अर्थवा जीव चिदात्मक है ऐसा कथन व्यवहारनयका विषय है । तो यहाँ जीवकी विशेष शक्ति को देखकर यह समझा गया कि जीव चिदात्मक है । तो यह एक पक्ष ही तो हुमा तो अनन्त धर्मात्मक पदार्थोंमेंसे किसी अंशका ही ग्रहण करना तो हुमा । तो जैसे यह भेदक विचार एक पक्ष है उसी प्रकार अभिन्न अखण्ड जीवको समझकर यह कहना अर्थवा समझना कि वीसा नहीं है अर्थात् व्यवहारनयने जो यह समझाया कि जीव चिदात्मक है तो निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है । तो ऐसा नहीं है ऐसी दृष्टि करनेमें भी तो कुछ विषय आया । वह भी तो एक पक्ष है । तो जैसे व्यवहारनयमें विधिका पक्ष है तो निश्चयनयमें निधिका पक्ष है और जो पक्षका ग्रहण करे उसे नय कहते हैं । तो नयके लक्षणमें बताया गया पक्ष ग्राह्यता विकल्पात्मकता ये दोनों

निश्चयनयमें भी पाये जाते और व्यवहारनयमें भी पाये जाते । अतः निश्चयनयमें नय का लक्षण बराबर घटिन होता है ।

**अर्थालोक विकल्पः स्यादुभयत्राविशेषतोषि यतः ।**

**न तथेत्यस्य नयस्व स्यादिह पञ्चस्य लक्षकत्वाच्च ॥६०८॥**

प्रतिषेध्य और प्रतिषेवक दोनों नयोंमें अर्थालोककी अविशेषता—उक्त गाथामें जो स्पष्टीकरण किया गया है उस हीको युक्तपूर्वक यहाँ पुनः बताते हैं । देखिये ! अर्थप्रकाश रूप विकल्प याने पदार्थ विषय हुए हैं इस प्रकारका विकल्प व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंमें ही समान है । इसी कारण जैसे व्यवहारनय विधिको विषय करनेसे नय कहलाता है । उसमें नयका लक्षण सुघटित है इसी प्रकार वैसा नहीं है । इस प्रकारके निषेधका विषय किया निश्चयनयने तो ऐसा निश्चयनयमें भी नयपना है, क्योंकि व्यवहारनयसे जैसे विधि :क्षका आलम्बन किया है उसी प्रकार निश्चयनयने निषेधका आलम्बन किया है । तो पक्षका आलम्बन करना व्यवहारके समान निश्चयनयमें भी घटित होता है । अतः निश्चयनयको निविषय नहीं कह सकते, निविकल्प नहीं कह सकते और इसी कारण उसमें नयका लक्षण घटित नहीं होता, यह भी नहीं कह सकते, इससे यह सिद्ध है कि निश्चयनय निषेध करनेकी बात समझा कर भी नयरूप है । उसमें निषेधका विषय पड़ा हुआ है ।

**एकाङ्गग्रहणादिति पञ्चस्य स्यादिहांशधर्मत्वम् ।**

**न तथेति द्रव्यार्थिकनयोस्ति मूलं यथा नयत्वस्व ॥६०९॥**

दोनों नयोंमें स्व स्व पक्षका निर्देश—व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी पक्षात्मक है इस बातका वर्णन इस गाथामें किया गया है । पक्ष उसीको कहते हैं जो एक अङ्गको ग्रहण करे । तो व्यवहारनयमें किसी एक धर्मकी विधि की थी तो व्यवहारनयने एक अङ्गको ग्रहण किया । तो निश्चयनयने भी तथा न इस तरहके पक्षको ग्रहण किया और इस पक्षमें अंशका ग्रहण है । तब निषेधका विषय करने वाला निश्चयनय भी एक अंशको विषय करनेके कारण पक्षात्मक माना जाता है । निविकल्पता तो उनके कहना चाहिए जहाँ न विधिका पक्ष रहता है और न निषेधका पक्ष रहता है । वहाँ तो जो पदार्थ जैसा है वही मात्र मान रहे हैं । उसके सम्बन्धमें विधि या निषेध सम्बन्धी विकल्प तरंग नहीं रहते । तो यों व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी एक नय लक्षण युक्त सिद्ध होता है ।

**एकाङ्गत्वमसिद्धं न नेति निश्चयनयस्य तस्य पुनः ।**

**वस्युनि शक्तिविशेषो यथा तथा तदविशेषशक्तित्वात् ॥६१०॥**

प्रतिषेधकनयमें एकाङ्गताकी सिद्धि – यहाँ कोई ऐसी आशङ्का न करे कि निश्चयनयमें एकांशपत्ता। सिद्ध नहीं है। निश्चयनयमें भी एकांगता बराबर है। निश्चयनयका विषय क्या ? निषेधका तथा न जैसे कि व्यवहार बताता है, वह नहीं, इस तरहके विषय करने वाले निश्चयनयमें एकांगता असिद्ध नहीं है, इसका कारण है कि जैसे वस्तुमें विशेष शक्तियाँ होती हैं उस ही प्रकार उसमें अविशेष शक्ति भी होती है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है और आमान्य विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणका विषय है। अब उस वस्तुमें सामान्य अंश तो द्रव्याधिकनयका विषय है, इसीको व्यवहारनयका विषय कह लीजिए और विशेष अंश पर्यायाधिकनयका विषय किया, इसमें वस्तुके एक अंगको विषय किया और निश्चयनयने निषेधको विषय किया, तो विशेषका निषेधरूप अंश है सामान्य अंशमें सामान्य अंशका विषय किया निश्चयनयने तो यों निश्चयनयमें भी एकांगता सिद्ध ही है। तो निश्चयनयमें एकांगपत्ता सिद्ध है इसी कारण पक्षग्राहता सिद्ध है, इसी कारण विकल्पात्मकता सिद्ध है। अतः निश्चयनयको नय कहना युक्तिसङ्गत ही है।

**ननु च व्यवहारनयः सोदाहरणो यथा तथायमपि ।**

**भवतु तदा को दोषो ज्ञानविकल्पाविशेषतो न्यायात् ॥६११॥**

**स यथा व्यवहारनयः सदनेकं स्याच्चिदात्मको जीवः ।**

**तदितरनयः स्वपक्षं वदतु सदेकं चिदात्मत्वतिचेत् ॥६१२॥**

निश्चयनयको सोदाहरण माननेकी आशंका अब यहाँ शङ्काकार यह कह रहा है कि जैसे व्यवहारनयको उदाहरण सहित बताया अथवा यों कहा गया कि व्यवहारनय उदाहरण सहित होता है तो इस ही प्रकार निश्चयनयको भी उदाहरण सहित माना जाय तो यों सिद्धान्त कहा जाय कि निश्चयनय भी उदाहरण सहित होता है। तब इसमें क्या दोष आता ? जब ज्ञान विकल्पकी अविशेषता दोनों जगह है, व्यवहारनयमें भी ज्ञान विकल्प बना हुआ है और निश्चयनयमें भी ज्ञान विकल्प बना हुआ है तो इस ज्ञान विकल्पकी समानताके कारण व्यवहारनयकी तरह भिश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाना चाहिए, फिर उसका निषेध क्यों किया जा रहा है ? उदाहरण सहित मान लिया जाना चाहिए उसके लिए दृष्टात रूपमें सुनिये ! कि व्यवहारनयका उदाहरण रख लीजिए सत् अनेक है अथवा जीव चिदात्मक है। और निश्चयनयका उदाहरण रख लीजिए कि सत् एक है, जीव सत् है, तब यहाँ ऐसा यह देखेंगे कि व्यवहारनयने सत्को अनेक बताया तो उससे विपरीत निश्चयनय बता रहा है कि सत् एक है, तो व्यवहारप्रथका जैसे वह उदाहरण है तो

निश्चयनयका यह उदाहरण हो गया कि सत् एक है और जैसे व्यवहारनयमें यह उदाहरण था कि जीव चिदात्मक है ऐसे ही यहाँ निश्चयनयमें यह उदाहरण हो गया कि जीव चित् स्वरूप है । तो ऐसा कहनेसे व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी उदाहरण सहित हो जाता है । और, यह भी विदित हो जाता है कि निश्चयनय व्यवहारनयसे भिन्न है । व्यवहारनय और तरहसे विकल्पका कर्ता है, निश्चयनय उससे विपरीत विकल्पका कर्ता है । तब व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी सोदाहरण मान लेना चाहिए ।

**न यतः सङ्करदोषो भवति तथा सर्वशून्यदोषश्च ।**

**स यथा लक्षणभेदाल्लक्ष्यविभागोस्त्यनन्यथासिद्धः ॥६ १३॥**

दोनों नयोंमें लक्षणभेद न मानकर समानता माननेपर दोषापत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काके समाधानमें इस गाथामें यह कहा जा रहा है कि यदि व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाता है तब संकर दोष और सर्व शून्यताका दोष आनेकी नीबत आती है, क्यों कि व्यवहारनयका मूल लक्षण यह है कि जो भेद करे सो व्यवहारनय है । और, यहाँ निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लेनेपर भेद बन जाता है । तो यहाँ भी भेद का ही ग्रहण हुआ । तो व्यवहारनय और निश्चयनयमें फिर कोई अन्तर नहीं रहता । यों संकर दोष आयगा । व्यवहार और निश्चय दोनों एकमेक बन गए और तब संकर दोष हो गया । व्यवहार निश्चय बन गया, निश्चय व्यवहार बन गया तो क्या रहा ? कुछ न रहा । यों सर्वशून्यताका दोष आता है । अब इस बातको सुनिये ! कि उदाहरण सहित निश्चयनयके प्रतिपादनमें भेद कैसे सिद्ध होता है । जैसे निश्चयनयका उदाहरण दिया कि सत् एक है तो यहाँ यह निहार लीजिए कि सत् तो बन गया लक्ष्य और एक बन गया लक्षण, जिसके विषयमें कहा जा रहा है वह तो है लक्ष्य और जो कुछ बात बताई जा रही वह है लक्षण, तो सत् एक है ऐसे कथनमें लक्ष्य लक्षण का भेद सिद्ध सोता है, और जो भेदको विषय करे उसे व्यवहारनय कहा गया है । यों निश्चयनय और व्यवहारनयमें संकर दोष हो जाता है । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में भी देखिये ! निश्चयनयका दूसरा उदाहरण शङ्काकारने यह दिया है कि जीव चित् है । तो जीवको चित् स्वरूप कहने पर भी जीव तो लक्ष्य सिद्ध होता है और उसका लक्षण चित् सिद्ध होता है । तो जीव लक्ष्य है चित् लक्षण है, इस तरह लक्ष्य लक्षण रूप भेद यहाँ बन गया । और, जितना भी भेद है वह व्यवहारनयका विषय होगा । भेद निश्चयनयका विषय नहीं होता । अब यदि निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लिया जानेके कारण निश्चयनयका भी विषय भेद मान लिया जाता है तो संकरणा और सर्व शून्यता ये दोनों यहाँ भली प्रकार सिद्ध हो जाते हैं । तब न निश्चय रहा

और न व्यवहारनय रहा । फिर लोक व्यवहारकी पढ़ति भी नष्ट हो जायगी । अतः यह बात मान लेना चाहिए कि निश्चयनयका विषय विषेध नहीं है और वहाँ उदाहरण नहीं । निश्चयनय उदाहरण रहित है और किसी भी प्रकार प्रतिपादनके योग्य नहीं है ।

### लक्षणमेकस्य सतो यथाकथचिद्यथा द्विधाकरणम् ।

व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुनः ॥६१४॥

व्यवहारनय व निश्चयनयके लक्षणमें परस्पर सप्रतिपक्षता – व्यवहारनयका लक्षण तो यह है कि एक ही अखण्ड सत् पदार्थमें जिस किसी भी प्रकार आवश्यक समझा जाय वहाँ भेद कर देना अर्थात् सत्में भेद बतलाना व्यवहारनयका लक्षण है । अब देखिये ! निश्चयनयका लक्षण ठीक इससे विपरीत है । सत्में अभेद बतलाना यह निश्चयनयका लक्षण है । तो भेदकी बात तो बतलायी जा सकती है । अभेदकी बात भेद किए बिना समझाई नहीं जा सकती और भेद करके समझाया गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहारनयके द्वारा परमार्थके विषयको समझा गया है, पर परमार्थका विषय सीधे किन्हीं शब्दोंसे बता दें ऐसा नहीं हो सका है । तो इससे यह सिद्ध है कि व्यवहारनयमें तो उदाहरण हो सकता है । क्योंकि उदाहरण तो भेद सिद्ध करता है पर निश्चयनयका उदाहरण नहीं होता, न इसमें विशेषण विशेष्य भाव बन सकता । उदाहरण हो और विशेषण विशेष्य भाव बने तो वह सब व्यवहारनय बन जायगा ।

अथ चेत्सदेकमिति वा चिदेव जीवोथ निश्चयो वदति ।

व्यवहारान्तर्भावो भवति सदेकस्य तदृद्विधापत्तेः ॥६१५॥

निश्चयनयको वचन प्रयोगमें उदाहृत किये जानेपर अनिष्ट दोषापत्तिका प्रसंग—यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार सत्को एक मान लिया जाय अथवा चित् हीं जीव है ऐसा मान लिया जाय और इसका निश्चयनयका उदाहरण बताया जाय तो व्यवहारनय और निश्चयनयमें कुछ भी भेद न रहेगा । ये जो दो उदाहरण शङ्काकारने दिया है वे उदाहरण तो व्यवहारनयमें ही गमित हैं । सत् एक है ऐसा कहनेपर भेद तो सिद्ध हो ही गया । यह सत् फिर एक है । वहाँ कल्पनामें दो जगह उपयोग बना । तो वह व्यवहारनयका विषय हुआ और जब कहा जीव सत् है तो यों जीवको चित्स्वरूप कहनेसे भी जीवमें भेद ही सिद्ध होगा । तो यों निश्चयनय का कुछ भी उदाहरण दिया जाय तो वह भेदपरक हो जानेसे व्यवहारनयका ही उदाहरण बनेगा, निश्चयनयका उदाहरण न कहा जा सकेगा । शङ्काकारने निश्चयनयमें

जो दो उदाहरण दिया है, सत् एक है और जीव चित् है, ये दोनों ही उदाहरण व्यवहारनयके बनते हैं निश्चयनयके नहीं। यह बात किस प्रकार घटित है सो अगली गाथा में कहते हैं ।

**एवं सदुदाहरणे सल्लक्ष्य लक्षणं तदेकमिति ।**

**लक्षणलक्ष्य विभागो भवति व्यवहारतः स नान्यत्र ॥६१६॥**

**अथवा चिदेव जीवो यदुदाहियतेष्यभेदबुद्धिमता ।**

**उक्त वदत्रापि तथा व्यवहारनयो न परमार्थः ॥६१७॥**

सत् एक है यों निश्चयनयका उदाहरण माननेपर होने वाली दोषापत्तिका विवरण—शङ्खाकारका जो उदाहरण है निश्चयनयके सम्बन्धमें कि सत् एक है तो इसमें देखिये ! कैसे दोष आ रहा है। यहाँ यह कहा कि सत् एक है वहाँ सत् तो बन गया लक्ष्य और एक हो गया, किन्तु लक्षण और लक्ष्यका भेद व्यवहारनयमें ही होता है, निश्चयनयमें नहीं होता। शङ्खाकारने दूसरा उदाहरण दिया है निश्चयके सम्बन्धमें कि जीव चित् है। तो यहाँ भी परख लीजिए कि जीव तो हो गया लक्ष्य और चित् बन गया लक्षण, तो यहाँ भी लक्ष्य लक्षणका भेद बन गया, और जो भेदका विषय कौरे उसे व्यवहारनय कहते हैं। यद्यपि शङ्खाकारने इन दोनों उदाहरणोंका बहुत प्रश्नास करके भेद बुद्धिकी और लाकर बताया होगा लेकिन उसका समुक्तिक किचार करनेपर यह ही सिद्ध होता कि उदाहरण मात्र ही भेदको उत्पन्न कर देता है। वह वितना भेद परक उदाहरण है यह बात तो अलग है, यह तो एक उसकी भीमांसाकी बात है, लेकिन उदाहरण देते ही यहाँ भेद सिद्ध हो जाता है, और जो भेद है वह व्यवहारनयका विषय है, निश्चयनयका विषय नहीं है इससे यह मानना चाहिए कि जितने भी भेद व्यवहार हैं वे सब व्यवहार ही हैं ।

**एवं सुसिद्धसंकर दोषे सति सर्वशून्यदोषः स्यात् ।**

**निरपेक्षस्य नयत्वाभावात्तल्लक्षणाद्यभावत्वात् ॥६१८॥**

उक्त प्रकार व्यवहार व निश्चयनयमें संकरदोष होनेपर सर्व शून्यताके दोषकी प्रसर्ति—व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी सोदाहरण मान लेनेपर सर्व संकर दोष हो जाता है, तो व्यवहारनव और निश्चयनय दोनों एकमेक हो जाते हैं। उनमें विषयभेद नहीं रहता और यों संदर दोष होनेपर यहाँ सर्व शून्यताका दोष आता है। हाँ यह बात तो जरूर थी कि व्यवहारनय उदाहरण सहित है और व्यवहारनय निश्चयनयकी अपेक्षा रखकर प्रयुक्त होता है, क्योंकि निरपेक्ष निश्चयनयका

प्रयोग गुणकारी नहीं होता, उसमें नयपने ता लक्षण नहीं आता । लोकव्यवहार नयकी भाँति निश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाय तो उदाहरण देनेमें तो भेद ही बनता है । और भेद जैसे व्यवहारनयका विषय हो वैसे ही उदाहरण देनेके निश्चयनयमें भी विषय बन गया । तो अब यह कैसे कहो जा सकेगा कि यह तो व्यवहारनय है और यह निश्चयनय है ? जब व्यवहारनय और निश्चयनयमें संकरपना आ गया तो उनमेंसे कौन टिके ? और कौन मिटे ? फल यह होगा कि न व्यवहार नय रहेगा और न निश्चयनय रहेगा ! यों सर्वशून्यताका दोष आता है । इस कारण यह निर्णय रखना चाहिए कि भेद विषय बाला तो व्यवहारनय है और अभेद विषय बाला निश्चयनय है । अथवा विधिपरक तो व्यवहारनय है और निषेधको ही विषय करने वाला निश्चयनय है । विशेषण विशेष्यभाव और उदाहरण व्यवहारनयमें संभव है ।

**ननु केवलं सदेव हि यदि वा जीवो विशेष्यनरपेदः ।**

**भवति च तदुदाहरणं भेदाभावात्तदा हि को दोषः ॥६१६॥**

**अपि चैव प्रतिनियतं व्यवहारस्यावकाश एव यथा ।**

**सदनेकं च सदेकं जीवश्चद्वयमात्मवानिति चेत् ॥६२०॥**

केवल सत् है या जीव है ? यों निश्चयनयका उदाहरण मान लेनेका शङ्खाकार द्वारा प्रतिपादन—अब यहाँ शङ्खाकार कहता है कि यहाँ सत् एक है ऐसा कहनेसे भी व्यवहारनय बता दिया ! जीव चित् है, इस कथनको भी व्यवहार नयने बता दिया, क्योंकि यहाँ शब्द दो बोले गए हैं । जब उनमें विशेषण विशेष्यभाव पना डाल दिया है, और यों भेद डालकर उसे निश्चयनयका उदाहरण नहीं माना जा रहा है तो चलो मत मानो ! लेकिन इतना तो मान लो कि निश्चयनयका उदाहरण केवल सत् इतना भर कहना है । सत् इतना ही शब्द बोल देनेपर अब विशेष्य भाव कहाँ बनेगा ? और उसका उदाहरण भी क्या मिलेगा ? तब तो इसको निश्चयनय समझ लीजिये ! तो यहाँ जब सत् इतना ही कहा तब कोई दोष नहीं आता ! इसी प्रकार जीव चित् है इतना कह देने भरसे उदाहरण और विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करके इसे भी निश्चयनयका विषय नहीं मानते तो चलो मत मानो ! किन्तु 'जीव' इतना भर शब्द तो निश्चयनयका विषय बन जायगा, फिर तो कोई दोष नहीं आता । व्यवहारनयका अवकाश तो वहाँ है जहाँ भेद नजर आता हो । सत् एक है, इतना कहनेमें भी भेद डाल दिया और उसे व्यवहारनय बता दिया । लेकिन 'सत्' इतना कहनेमें क्या भेन डालोगे ? वह तो व्यवहारनयका विषय न बनेगा । उसे तो निश्चयनयका उदाहरण मानो, इसी प्रकार जीव चित्स्वरूप है, इसमें

भेद डाल दिया, और उसे व्यवहारनयका विषय बना दिया। लेकिन कोई यह कहे कि जीव तो इतना कहने भरसे तुम क्यों नहीं निश्चयनयका उदाहरण मान लेते? तो ये निश्चयनयके उदाहरण हैं, और आपको इस तरए निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लेना चाहिए। अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं,

**न यतः सदिति विकल्पो जीवः काल्पनिक इति विकल्पश्च ।  
तत्तद्वर्मविशिष्टस्तद्वानुपचर्यते स यथा ॥६२१॥**

उत्त उदाहरणोंकी भी धर्मोपचार होनेसे निश्चयनयकी अविषयता— उत्त गाथामें शङ्काकारने यह कहा है कि जीव है, सत् है चित् है आदिक रूप तो निश्चयनयके विषय हो जाना चाहिए। उस शङ्काके समाचारमें यह गाथा कही गई है। शङ्काकारकी उत्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि सत् इतना भी कोई विकल्प पड़े अथवा जीव इतना भी कोई विकल्प हो तो ये दोनों ही विकल्प कल्पित हैं अर्थात् किसी अर्थको लेकर, विशेषण भावको लेकर यह शब्द बना है। भिन्न-भिन्न धर्मोंसे युक्त होनेके कारण उन उन धर्मों वाला बताया जाय पदार्थ तो यह उपचारसे कहा जायगा। जिस धर्मकी जब विवक्षा होती है उस धर्मसे युक्त वस्तुको कहना यह उपचारसे होता है। यद्यपि शङ्काकारने विशेषण वाला द्विनीय शब्द हटाकर केवल यही प्रयोग किया कि सत् है, जीव है, लेकिन इतना भी कहनेपर भिन्न धर्मका संकेत होता है। और, उस धर्मसे युक्त पदार्थका निर्देश होता है अतएव यहाँ भी भेद उपस्थित हो ही गया, और जहाँ भेद आये उसको व्यवहार कहते हैं। इस कारण सत् है जीव है, इतना भी प्रयोग निश्चयनयमें होता नहीं है।

**जीवः प्राणादिमतः संज्ञाकरणं यदेतदेवेति ।**

**जीवनगुणसापेक्षो जीवः प्राणादिमानिहास्त्यर्थात् ॥६२२॥**

निश्चयनयके उत्त उदाहरणमें धर्मोपचारका स्पष्टीकरण—जीव है, सत् है, ऐसा एक एक शब्द कहनेमें भी धर्मका उपचार होता है, यह बात जो उत्त गाथामें कही गई है उसका स्पष्टीकरण इस गाथामें किया गया है। जैसे कहा जीव है तो जीवका अर्थ क्या है? जो प्राणोंको धारण करे उसको जीव कहते हैं। या जो जीवन गुणकी अपेक्षा रखे उसे जीव कहते हैं। तो लो यहाँ जीव मात्र ही कहा तो भी यह बोध हुआ कि जो प्राणोंसे युक्त हो सो जीव है, अथवा जिसमें जीवत्व गुण हो सो जीव है। तो यहाँ प्राणादिमान होना या जीवन गुण सापेक्ष होना यह बात तो शब्द बोलनेसे धर्मित हो गई। तो लो, अब भेद आ गया कि यह पदार्थ भी है जो प्राणोंसे जोता है, अर्थवा जिसमें जीवन गुण रहता है, ये सब बातें केवल एक शब्द कहनेपर

भी आ जाती हैं । तो यों कुछ भी उदाहरण देवें वे सब भेद साधक हैं और जो भेद साधक वचन हैं वे सब व्यवहारनयमें ही गमित हैं ।

**यदि वा सदिति सत्सतः स्यात्सङ्गा सत्तागुणस्यसापेक्षात् ।**

**लब्धं तदनुक्रमपि सङ्गावात् सदिति वा गुणो द्रव्यम् ॥६२३॥**

गुणसापेक्षता होनेसे उक्त उदाहरणकी निश्चयनयविषयता—एक शब्द बोलनेपर भी धर्म विशिष्ट वस्तुका बोध होता है और वहाँ उस धर्मका वस्तुमें उपचार चन्ता है इसके स्पष्टीकरणके लिए इस गाथामें द्वितीय उदाहरणमें आलोचना की गई है । जैसे यह कहा गया कि सत् है तो सत् यह नाम सत् गुणकी अपेक्षा रखने वाले पदार्थका है । याने जिसमें सत्त्व गुण हो उसे सत्त्व कहते हैं । सत् गुण न कहें तो भी और बात न कहनेपर भी यह बोध तो हो ही गया कि अस्तित्व गुणसे सहित है । तो यहाँ सत्तमें सीधा यह विकल्प नहीं उठाया कि वह द्रव्य है या गुण है तो भी बिना हो कहे भी सत् इतना मात्र कहनेसे यह विकल्प उठ जाता है । यह पदार्थ सत् है । इसका भाव यह है कि यह पदार्थ अस्तित्व गुणसे युक्त है । इसमें सत्ता धर्म पाया जाता है और इस तरहकी दृष्टि रखनेसे यहाँ भेदका बोध हो गया । पदार्थ है उसमें सत्त्व गुण है । तो लो सत्त्व गुण और वह गुणी पदार्थ ऐसे वह दो भेद कर दिए गए । इससे समझना चाहिए कि जितने भी विकल्पात्मक ज्ञान हैं अथवा भेद साधक विज्ञान हैं वह सब व्यवहारनयका विषय होता है । देखो ना, केवल इतना ही कहा कि सत् लेकिन विद्वान् श्रोताश्रोतोंको तो यह भास ही जायगा कि यह कहा जा रहा है । जिसमें सत्त्व गुण है ऐसा यहाँ पदार्थ है तो गुण गुणीका भेद हो ही गया और यह भेद व्यवहारनयका विषय है इस कारण इसको निश्चयनयका उदाहरण नहीं कहा जा सकता है ।

**यदि च विशेषणशून्यं विशेष्यमात्रं सुनिश्चयस्यार्थः ।**

**द्रव्यं गुणो न य इति वा व्यवहारलोपदोषः स्यात् ॥६२४॥**

विशेषण शून्य विशेष्यमात्रको निश्चयनयका उदाहरण माननेकी समालोचना—यदि कोई शङ्काकार यहाँ ऐसी मनमें शङ्का रखे कि किसी शब्दके बोलनेपर कोई विशेषण वाली बात ही दृष्टिमें आ जाती है तो इस स्थितिमें दिमागको नहीं लगाया । शब्द तो बोल दे, पर विशेषण रहित विशेष्यका ही ध्यान रखे तो यों विशेषण रहित विशेष्य तो निश्चयनयका विषय मान लिया जागया । यदि कोई विवेकी ऐसा अपना विवेक बनाये तो सुनो ! इस तरह ही दृष्टि बनाकर अथवा विशेषण रहित विशेष्यको ही दृष्टिमें रखकर वह कुछ आगे पढ़ रहा है तो इस स्थितिमें चाहे द्रव्य और गुणकी सिद्धि हो जाय परन्तु पर्याय तो सिद्ध होगी ह । नहीं । जो शब्द

बोला उस शब्दसे जो विशेषण इतनित होता है उसको तो दृष्टिमें लेना ही नहीं है इस आग्रही शङ्खाकारको और उस शब्दके द्वारा धर्म विशिष्ट जो सर्वी समझा जाता है केवल उस विशेषणको ही वाच्य समझता है तब तो शब्दार्थी भी खुतम हुआ, विशेषण-भाव न रहा, पर्याय भी सिद्ध न हो सका। तो यों जब पर्यायें भी सिद्ध न हो सकेंगी तो व्यवहार कहाँ रहेगा? उसका ही लोप हो जायगा। जैसे मानो कहा जीव और जीव शब्दका अर्थ यह है कि जो चैतन्य प्राणसे जीवे या दश प्राणोंसे जीवे, जहाँ जीवन गुणकी बात हो उसको जीव कहते हैं। अब शब्द बोलकर जीवकी विशेषता तो दृष्टिमें रखी नहीं, फल क्या हुआ? असाधारण धर्म गायब हो गया। जब असाधारण धर्मका ही ध्यान न रहा तो असाधारण धर्म विशिष्ट ही तो गुण द्रव्य जाना जाता है। किसी पदार्थकी पहचान असाधारण धर्मसे होती है। अब यहाँ असाधारण धर्मका तो रखाल ही नहीं कि। जा रहा है तो फिर द्रव्यका भी बोध कैसे हो? गुणका भी बोध कैसे हो? फिर तो कहाँ बोध हो ही नहीं सकता। सर्व प्रकारकी तीर्थ प्रवृत्तिका लोप होगा, व्यवहारका भी लोप होगा, व्यवहारका भी लोप हो जायगा। यह एक महान दोष आता है यदि विशेषण रहित विशेषणको ही निश्चयनय का विषय स्थीकार किया जाता है।

**तस्माद्वसेयमिदं यावदुदाहरणपूर्वको रूपः ।**

**तावान् व्यवहारनयस्तस्य निषेधात्मकस्तु परमार्थः ॥६२५॥**

सोदाहरणरूपोंकी व्यवहारनयरूपता व निश्चयनयकी निषेधात्मकता का निर्णय—इस कारण ऐसा ही निर्णय रखना चाहिए कि जिन्ना भी उदाहरण पूर्वक कथन बनेगा वह सब व्यवह रनय बनेगा। क्योंकि कथनमें कोई शब्द ही तो बोला जायगा और शब्द धातु निष्पत्त होता है। धातु किसी एक अपनी क्रियाको बताता है। उस क्रियामें रहने वालेको धातु निष्पत्त शब्द बनाते हैं तो शब्दों द्वारा कोई विशेषणकी बात ही तो प्रकट हुई। ऐसी स्थितिमें अंश ही जाना गया, भेद ही समझा गया। तब कुछ भी उदाहरण दें कुछ भी वचन बोलें उस वचनमें भेद ही निष्पत्त होगा। और, भेद सिद्ध होनेके कारण वह व्यवहारनय बनेगा। फिर निश्चयनय क्या बनेगा? तो यही कहना पड़ेगा कि व्यवहारका जो निषेधक हो सो निश्चयनय है। निश्चयनयमें लक्ष्य कुछ न रहा हो ऐसी बात नहीं है। निश्चयनयमें लक्ष्य है। किसी का बोध है जिसके बलपर ही तो व्यवहारका निषेध किया जा रहा है। यदि कोई किसी सम्बन्धमें यह कहे कि ऐसा नहीं है तो ऐसा कहने वालेके यह ज्ञान तो बना ही है कि ऐसा है। भले ही उसे न कहे, पर तथ्य मालूम हो तभी कोई अतथ्यका निषेध कर सकता है कि ऐसा नहीं है। निश्चयनयमें तथ्यका पता है, उस अखण्ड सत्का परिचय है, जिसके बलपर ही यह निश्चयनय निषेध करता है व्यवहारका कि ऐसा

नहीं है। तो निश्चयनयका विषय निषेध है और व्यवहारनयका विषय भेद है। जो भेदको सिद्ध करे सो व्यवहारनय है और जो व्यवहारका निषेध करे सो निश्चयनय है।

**ननु च व्यवहारनयो भवति च निश्चयनयो विकल्पात्मा ।**

**कथमाद्यः प्रतिषेधोऽस्त्यन्यः प्रतिषेधकश्चकथमिति चेत् ॥६२६॥**

व्यवहारनय व निश्चयनय दोनोंके विकल्पात्मक होनेपर व्यवहारको प्रतिषेध्य व निश्चयनयको प्रतिषेधक माननेके कारणकी जिज्ञासा— शङ्काकार यहाँ अपना एक प्रश्न रख रहा है कि जब व्यवहारनय भी विकल्पात्मक है और निश्चयनय भी विकल्पात्मक है फिर यह भेद कैसे बन गया कि व्यवहारनय तो प्रतिषेध्य होता है और निश्चयनय उसका प्रतिषेधक होता है। तब दोनों ही नय विकल्पात्मक हैं। दोनों नयोंकी विकल्पात्मकता भली प्रकार सिद्ध की गई है। यद्यपि निश्चयनका विषय निषेध कहा है इतनेपर भी विकल्पात्मक भी सिद्ध किया गया। निश्चयनयमें न का तो बोध हुआ। तो निषेधरूप विकल्पका करने वाला निश्चयनय है इय बातका भले प्रकार समर्थन किया गया है। तो जब व्यवहारनय भी विकल्पात्मक है और निश्चयनय भी विकल्पात्मक है फिर यह भेद कैसे डाला जा रहा है कि व्यवहारनय तो निषेध करने योग्य है और निश्चयनय उसका प्रतिषेधक है। कोई उल्टा कहदे कि व्यवहारनय तो निषेधक है, निश्चयनय निषेध्य है विकल्पात्मककी समानता होनेपर फिर उनमें एक कोई प्रतिषेध्य हो दूसरा प्रतिषेधक हो यह अन्तर कैसे बना? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

**न यतो विकल्पमात्रमर्थाकृतिपरिणतं यथा वस्तु ।**

**पूतिषेध्यस्य न हेतुश्चेदयथार्थस्तु हेतुरिह तस्य ॥६२७॥**

व्यवहारके प्रतिषेध्यत्वमें अयथार्थताकी कारणरूपता—शङ्काकारने जो उक्त शङ्का की है वह बिना विचारे की है। तथ्य यह है कि व्यवहार प्रतिषेध्य है और निश्चयनय प्रतिषेधक है ऐसा अन्तर होनेका कारण यथार्थता और अयथार्थता है, विकल्पात्मकपना नहीं है। विकल्पात्मकपना होनेसे ही कोई प्रतिषेधक बने और कोई प्रतिषेध्य बने तब तो उक्त शङ्का ठीक हो सकती थी, लेकिन विकल्पात्मकताके आधार पर तो यहाँ प्रतिषेध्य और प्रतिषेधकपनेकी बात ही नहीं है, किन्तु जहाँ अयथार्थता है वह प्रतिषेध्य है, जहाँ अयथार्थता नहीं है वह प्रतिषेधक है। प्रतिषेध करने वाले नयमें भी विकल्प पड़ा है लेकिन वह विकल्प निषेधक है और व्यवहारनयमें भी विकल्प पड़ा है, वह विकल्प प्रतिषेध्य है। अब इस हीं तथ्यको अगली गाथामें

स्पष्ट करते हैं।

**व्यवहारः किल मिथ्या स्वयमपि मिथ्योपदेशकश्च यतः ।  
प्रतिषेध्यस्तस्मादिह मिथ्यादृष्टिस्तदर्थदृष्टिश्च ॥६२८॥**

व्यवहारके प्रतिषेध्यत्वमें मिथ्योपदेशकत्वकी कारणता—व्यवहारनय मिथ्या होता है, क्योंकि वह स्वयं मिथ्या उपदेश करने वाला है। और, इसी कारण से व्यवहारनय अर्थात्, मिथ्योपदेशक वचन प्रतिषेध्य हैं द्वारा करने योग्य हैं और ऐसे व्यवहारनयके विषयपर जो दृष्टि देते हैं, तद्रूप श्रद्धा करते हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव हैं। जैसे कहा जीव ज्ञानवान् है, तो ऐसा कथन करके जीवके स्वरूपपर दृष्टि पहुंचाने का प्रयास किया गया है। और, यहां प्रयास निश्चयनयके विषयका लक्ष्य करनेके लिए किया गया है। जीव परमार्थसे कैसा है मैं कैसा हूँ ऐसा समझमेंके लिए इस व्यवहारनयका प्रयास हुआ है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, मैं ज्ञानवान् हूँ। लेकिन उस प्रयोजन को भूल जायें कोई और व्यवहारनयने जिस विधिसे कुछ कहा है उस ही विधिका आग्रह करले जैसे कि इस प्रसङ्गमें यह कहा गया कि जीव ज्ञान वाला है तो व्यवहारनयसे यह समझाया कि जीव एक पदार्थ है, ज्ञान भी एक पदार्थ है और ज्ञान जीव में पाया जाता है। ऐसा यदि कोई समझले तो भी जीवके तथ्यपर तो नहीं पहुंचे। बल्कि उसे जीवसे निराला और ज्ञानसे निराला समझ लिया। और, ऐसा यदि कोई समझ रखे तो उसे सम्यग्दृष्टि तो न कहा जा सकेगा। तो व्यवहारनय जिन वचनोंमें अपना विषय कहता है उन वचनोंका जितना अर्थ है उतने ही अर्थका अनुशारण करके केवल वही मान लेवे और प्रयोजनको भूल जाय तो उसका यह कथन मिथ्या हो जाता है। और, इसी कारण यह प्रतिषेध्य है जैसे कि निश्चयनयने बताया कि व्यवहारनयने जो कहा है सो परमार्थसे नहीं है। तो यो व्यवहार प्रतिषेध्य बना, अब उस व्यवहारनय पर ही जो चले अनुशारण करे ऐसी श्रद्धा रखने वाला पुरुष मिथ्यादृष्टि है, उसको शान्तिका भार्ग मिलना असम्भव है।

**स्वयमपि भूतार्थत्वाद्भवति स निश्चयनयो हि सम्यक्त्वम् ।  
अविकल्पवदतिवागिवस्यादनुभवैकगम्यवच्यार्थः ॥ ६२९ ॥**

**यदि वा सन्यग्दृष्टिस्तदृष्टिः कार्यकारी स्यात् ।**

**तस्मात् स उपोद्योनोपादेयस्यदन्यनयवादः ॥ ६३० ॥**

निश्चयनयकी यथार्थता व उपादेयता—निश्चयनय स्वयं यथार्थ विषयको प्रतिपादन करने वाला है, इसी कारण उसे भूतार्थ कहते हैं और वह सम्यकरूप होता

है। इस ही निश्चय तत्त्वके आश्रयसे सम्यक्त्व प्रकट होता है। यद्यपि यह निश्चयनय विलगात्मक है इसमें निषेधरूप विकल्प पड़ा है तो भी वह अविकल्प जैसा ही होरहा है, क्योंकि निश्चयनय सब प्रकारके भेद विकल्पोंका निषेध करने वाला है। तो जहाँ समस्त भेदभिट्टसे हटाया वहाँ जो टिट्टमें आया, टिट्टमें आया इस कारण अविकल्प जैसा ही प्रतीत होता है। निश्चयनय वस्तुतः वचनके अगोचर है। यद्यपि निश्चयनयका विषय वहाँ निषेध बताया गया है, वह प्रतिषेधगम्य है। यों निषेधरूप वचनको उसका विषय बताया है किर भी वह वचनके अगोचर जैसा ही है। निश्चयनयका वाच्य क्या है? इस नयने किस विषयको समझा है? यह बात तो अनुभवगम्य है। अनुभवसे निश्चय नयके विषयका बोध होता है। यद्यपि अनुभवकी दशा निविकल्प दशा है और निश्चय नयकी दशा सविकल्प दशा है किर भी निश्चयनयके प्रकरणमें कौन सा तत्त्व आया? इसका स्पष्ट परिचय अनुभवका ही हो पाता है। अतएव निश्चयनय वचनके अगोचर माना गया है। वचनके द्वारा जो कुछ कहा जायगा वह समस्त विवेचन किसी न किसी प्रकारसे व्योधरूप ही होगा और वह विवेचन व्यवहारनयका ही विषय बनेगा। अतः यह निर्णय बना कि निश्चयनय निषेधरूपसे ही वक्तव्य है। विशेष निश्चयनय वचनके अगोचर है, ऐसा निश्चयनयके विषयका श्रद्धान करने वाला जीव सम्यग्टटिं है और वही कार्यकारी है। अपनी अनन्त प्रभुताका विकास कर सदाके लिए ज्ञानानन्दमय हो जाना है। तो जिसकी टिट्ट जिसके आश्रयसे निर्मल पर्यायोंका प्रवाह चल उठता है ऐसा वह निश्चयनय उगादेय कहा गया है। और इस निश्चयनयके अतिरिक्त जितने भी नयवाद हैं वे व्यवहारवाद हैं और अग्राह्य हैं। उसके विषयभूत भेदका आश्रय करनेसे शान्ति अथवा मोक्षकी अवस्था प्रकट नहीं होती है। यों निश्चयनय यथार्थ है और व्यवहारनय मिथ्या है। इसी कारण निश्चयनयको प्रतिषेधक कहा है और व्यवहारनयको प्रतिषेध्य कहा है।

**ननु च व्यवहारनयो भद्रति स सर्वोपि कथमभूतार्थः ।**

**गुणपर्ययवद्द्रव्यं यथोपदेशात्तथानुभूतश्च ॥ ६३१ ॥**

**अथ किमभूतार्थत्वं द्रव्याभावोऽथवा गुणाभावः ।**

**उभयाभावो वा किल तद्योगस्यात्प्रभावसादिति चेत् । ६३२ ।**

वस्तुस्वरूपप्रतिपादक व्यवहारनयकी अभूतार्थताके कारणकी जिज्ञासा यहाँ शङ्खाकार कहता है कि व्यवहारनय सारा ही कैसे अभूतार्थ हो जायगा? जैसे व्यवहारनयमें यह उपदेश है कि द्रव्य गुण पर्याय वाले होते हैं और ऐसा उपदेश सर्वज्ञ-देव और महर्षियों द्वारा हुआ है और अनुभव भी यह बताता है कि प्रत्येक पदार्थ

गुणपर्याप्तमक होता है। केवल गुण रूप ही पदार्थ नहीं अर्थात् वहाँ यदि परिणामन नहीं है तो कुछ भी सत्त्व नहीं है और यदि गुण नहीं है तो परिणामन ही क्या हो ? वहाँ भी सत्त्व न रहेगा। तो गुण पर्याप्त वाला द्रव्य है ऐसा जो उपदेश है वह व्यवहारनयका उपदेश है। अब यहाँ कोई यह बताये कि इस उपायमें गलती क्या है और किस बातसे यह व्यवहारनय अभूतार्थ बन जाता है बताये ? कोई कि क्या द्रव्यका अभाव है जिससे कि द्रव्यकी बात कही जानी मिथ्या बन जाय, अथवा गुणका अभाव है ? जिससे कि गुणके अनुद्वाका बचन मिथ्या बनाया जाय ? या दोनोंका अभाव है जिससे कि गुण पर्यवत् द्रव्यं, इस सिद्धान्तको मिथ्या कहा जाय ? किसका अभाव है ? अथवा क्या उन दोनोंके मेलका अभाव है, अर्थात् गुण पर्याप्त दोनों एक स'थ एक वस्तुमें न रह सके, क्या ऐसी बात है ? कौनसा कारण है जिससे कि यह कहा जा सके कि गुण पर्यवत् द्रव्यं इस प्रकार महिजिनोंका जो उपदेश है, व्यवहारनयका जो कथन है वह मिथ्या हो जाय। और जब ये सब अभाव नहीं मालूम होते, गुण भी है, पर्याप्त भी विदित होती है और सदा गुण पर्याप्तमक है तब इस व्यवहारनयके उपदेशको मिथ्या अथवा अभूतार्थ क्यों कहा जा रहा है ? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं ।

**सत्यं न गुणाभावो द्रव्याभावो न नोभयाभावः ।**

**न हि तद्योगाभावो व्यवहारः स्यात्तथाप्यभूतार्थः ॥६३३॥**

वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन किया जानेपर भी व्यवहारनयकी अभूतार्थताका कथन—शङ्काकारने ऐसा पूछकर कि क्या गुणका अभाव है या द्रव्यका अभाव है या दोनोंके मेलका अभाव है ? यह सब पूछकर उसका इस प्रकारसे उत्तर न मिलेगा। ऐसी समझ बनाकर यह पोषण किया है कि व्यवहारनय यथार्थ होता है, वह मिथ्या नहीं है। इस शङ्काका समाधान इस गाथामें दिया है। शङ्काकारका यह कहना यद्यपि ठीक है, गुणका अभाव नहीं है, द्रव्यका भी अभाव नहीं है, दोनोंका भी अभाव नहीं है और दोनोंके मेलका भी अभाव नहीं है, इतनेपर भी व्यवहारनय मिथ्या ही होता है। मिथ्या होनेका कारण क्या, है इस बातको अगली गाथामें बतायेंगे पर संक्षेपमें यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रणालीसे किसी भी प्रकारका भेद सिद्ध होता हो तो वह प्रणाली अभूतार्थ कही जायगी। क्योंकि वस्तुमें कहीं भी भेद पड़ा हुआ नहीं है। यह व्यवहारनय की अभूतार्थताकी कुञ्जी है। जहाँ भी अभूतार्थता सिद्ध होती हो वहाँ यह बात मिलेगी कि अभेद वस्तुमें किसी भी प्रकारका भेद करने का प्रयत्न किया गया है। यावत भेद है वह सब व्यवहार है, इसी कुञ्जीके अनुसार शंकाकारकी शङ्काके समाधानका स्पष्टीकरण भव अगली गाथाओंमें दिया जा रहा है।

इदमत्र निदानं किल गुणवद्द्रव्यं यदुक्तिः यत्रे ।

अस्ति गुणोस्ति द्रव्यं तद्योगात् दिह लब्धमित्यर्थात् । ६३४ ॥

तदसन्न गुणोस्ति यतो न द्रव्यं नोभयं न तद्योगः ।

केवलमद्वैतं सञ्ज्ञवतु गुणे वा तदेव तद्द्रव्यम् ॥ ६३५ ॥

लक्षणप्रतिपादक व्यवहारनयकी भी अभूतार्थताके कारणका स्पष्टीकरण

गुणपर्यवत् द्रव्यं इस प्रकारका आश्रय लेकर जो संतजनोंका उपदेश है वह यद्यपि कार्यकारी है, परमार्थ वस्तु ती और लक्ष्य करानेका इसमें प्रयास भरा है लेकिन जिन शब्दोंमें यह उपदेश है वे शब्द यह बतलाते हैं कि यह व्यवहारनय मिथ्या है, क्योंकि इसमें यही तो कहा गया है कि द्रव्य गुणपर्याय वाला है । जहाँ यह बात आई कि द्रव्य गुण वाला है तो उससे ऐसा ही श्रव्य ध्वनित होता है कि गुण कोई चीज है, द्रव्य कोई चीज है और फिर गुण के मेलसे यह द्रव्य गुण निराना कहलाया लेकिन बात ऐसी है कहाँ ? पदार्थ तो अपने आपमें अद्वैत सत् है । तब पर्यायकी बात कहकर उपदेश किया है कि द्रव्य पर्याय निराला है । वहाँ भी यही अर्थ ध्वनित होता है कि पर्याय कुछ चीज है और द्रव्य कुछ चीज है । फिर उन पर्यायोंका मेल करानेपर यह द्रव्य पर्याय वाला कहलाता है । लेकिन पर्याय क्या कोई भिन्न वस्तु है और द्रव्य कोई उससे जुदी चीज है ? इस लक्षणमें जो कुछ जिन शब्दोंसे कहा गया है उन्हीं शब्दोंके अनुसार समझ बनानेपर विशेषवादका प्रसङ्ग आता है । जब कहा कि द्रव्य गुण पर्याय वाला है तो वहाँ भी यही समझिये कि परमार्थतः न तो कोई गुण वस्तु है और न केवल कोई द्रव्य वस्तु है, न दोनों हैं, न उन दोनोंका योग है । किन्तु केवल वह एक अद्वैत सत् है । अब चाहे कोई गुणको दृष्टि रखकर सत् गुण कहे, चाहे कोई द्रव्यकी दृष्टि रखकर सत् द्रव्य कहे पर वस्तुतः तो वहाँ अनिर्वचनीय अद्वैत सत् है । तो वस्तुमें कोई ऐसा भी पड़ा हुआ है और ये व्यवहारनयके लक्षण उन भेदोंकी बात बताते हैं इस कारणसे यह व्यवहारनय मिथ्या कहलाता है । यहाँ निरंय इस प्रसङ्गके अन्तमें इस गाथामें दिया है ।

तस्मान्यायागत इति व्यवहारः स्यान्योप्यभूतार्थः ।

केवलमनुभवस्तारस्तस्य च मिथ्यादृशो हतास्तेषि ॥ ६३६ ॥

ध्यवहारनयके अभूतार्थत्वका व व्यवहारनयके अनुभविताओंके मिथ्या दृष्टित्वका निर्णय - उक्त गाथामें जो युक्ति दी है उस युक्तिके अनुसार यह बात न्यायसे प्राप्त हो चुकती है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है, क्योंकि व्यवहारनय भेदका साधन करता है और भेदरूपसे दृष्टि बनानेपर उपयोगकी निर्मलता नहीं बनती ।

अभेद वस्तु आश्रयानीय नहीं हो पाता । इस कारण भेदकी सिद्धि करने वाला व्यवहारनय अभूतार्थ है । जो लोग केवल इसी व्यवहारनयका आश्रय करते हैं ऐसे ही भेद का अनुभव करते रहते हैं वे तां बरबाद हो जाते हैं, क्योंकि शान्तिका मार्ग मिल नहीं पाता और अमका क्लेश सहते रहते हैं । यों व्यवहारनका आलम्बन नहीं करने वाले पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं । व्यवहारका प्रतिषेध करके निश्चयनयने जिस तत्त्वको दिखाया है उस तत्त्वका आश्रय करनेसे सम्प्रक्ष्व होता है और उत्तरोत्तर प्रकाश होकर उसकी स्थिरतामें रत्नश्रव्यकी पूर्णता बनती है । यों निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है । यह प्रकरण यहाँ निर्देश सिद्ध होता है ।

**ननु चैर्व चेन्नियमादादरणीयो नयो हि परमार्थः ।**

**किमकिञ्चित्कारित्वाद् व्यवहारेण तथाविधेन यतः ॥ ६३७ ॥**

अभूतार्थ होनेपर भी व्यवहारनयकी वाच्यताके कारणकी जिज्ञासा—  
अब यहाँ शङ्काकार यह कह रहा है कि जब व्यवहारनयका अनुभव करनेसे बरबादी है और व्यवहारनयका आलम्बन करने वाले मिथ्यादृष्टि है । यों जब व्यवहारनय मिथ्या ही है तब तो केवल निश्चयनयका ही आदर करना चाहिए और जब व्यवहार नय कुछ भी करनेमें समर्थ न रहा वह मिथ्या ही है तो उसे फिर सर्वथा कहना ही न चाहिए । व्यवहारनयका फिर प्रयोग किया नी क्यों जा रहा है ? उत्त प्रसङ्गोंसे यह विदित हो रहा है कि व्यवहारनय मिथ्या है, आदरके योग्य नहीं । तो इतने तिरस्कृत किये गए व्यवहारनयका फिर प्रयोग क्यों किया जा रहा है, इसका समाधान करते हैं ।

**नेवं यतो बलादिह विप्रतिपत्तौ च संशयापत्तौ ।**

**वस्तुविचारे यदि वा प्रमाणमुभयावलम्बितज्ज्ञानम् ॥ ६३८ ॥**

व्यवहारनयकी वाच्यतामें वस्तु विचारार्थताकी कारणरूपता—  
शङ्काकारकी उत्त प्रश्न नहीं है कि जब किसी विषयमें विवाद हो जाय अथवा किसी विषयमें संदेह हो जाय तब व्यवहारनयका आलम्बन बलात लेना ही पड़ता है । उस समय व्यवहारनयका आलम्बन लिए बिना समस्या नहीं सुलझती । किसी तत्त्वके स्वरूपमें विवाद हो गया, अब वह विवाद तो किसी प्रतिपादनसे ही तो समझा जायगा । युक्ति विशेषण भेद सभी दृष्टियोंसे उसे समझाना पड़ेगा तब विवाद शान्त होगा । और जब किसी शब्दका बोलना भी व्यवहार हो गया तो निश्चयनय प्रतिबोधका कारण तो न बना कि दूसरेको यह समझा देवें तो विवाद जैसी परिस्थिति होनेपर व्यवहारनयका ही आलम्बन लेना पड़ता है । इसी प्रकार किसी विषय में संदेह हो गया तो वह भी विवादकी ही चीज है । तो संशय होनेपर जो समझते

समझानेकी दशा बनेगी तो व्यवहारनयका आलम्बन करके ही बनेगी । तो वहीं व्यवहारनय आवश्यक हो गया । इसी प्रकार जब वस्तुका विचार करनेको ही बैठेगे तो उस विचार करनेके प्रपञ्चमें भी व्यवहारनयका आलम्बन आवश्य लेना होगा और फिर यह भी समझ लीजिये कि वहीं ज्ञान प्रमाण कहला सकता है जो ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनयका आलम्बन लेता हो । सम्यज्ञान तब ही अपनी सब कलाओं से युक्त हो पाता है जबकि निश्चयनय और व्यवहारनय दोनोंका आलम्बन करके बोध किया गया हो । केवल व्यवहारनयका आलम्बन करना जैसे प्राणियोंको कुरागमें ले जाने वाना बन जाता है, यों ही व्यवहारनयके बिना निश्चयनयका ही आलम्बन करनेमें प्रमाणता नहीं आ पाती है । व्यवहारनयका आलम्बन लिए बिना पदार्थका विचार ही नहीं हो सकता है । अतः व्यवहारनयका निरूपण आवश्यक हो जाता है । यहाँ कोई यह भी शंका कर सकता है कि जब व्यवहारनय मिथ्या है तो व्यवहारनय के द्वारा जो वस्तुका विचार बनता है, जो भी कथन होता है वह भी मिथ्या ही होगा । तब भी व्यवहारकी कथा आवश्यकता रही ? लेकिन यह शंका किसी अंशमें ठीक हो सकती है, परन्तु तथ्य यह है कि बिना व्यवहारके वस्तुका विचार हो ही नहीं सकता, कुछ भी निरूपण न करें तो यह कैसे जाना जायगा कि पदार्थ अनन्त गुणात्मक है ! पदार्थ परिणामी है । इस सबका परिज्ञान व्यवहारनयके द्वारा पदार्थको जानकर ही तो यथार्थताका बोध होगा । या सरल शब्दोंमें यों कह लीजिये कि व्यवहार पूर्वक ही आत्मा निश्चयनयपर आरूढ़ होता है । यद्यपि व्यवहारनयकी जो विवेचना है उसे यथार्थ न कहेंगे लेकिन विवेचनके द्वारा यथार्थताका बोध होता है । जैसे कि कोई अंगुलीके इशारेसे चन्द्रमा को दिखाये तो अंगुलीका इशारा यह खुद चन्द्रमा न कहलायेगा, लेकिन उस सहारेसे चन्द्रमाका बोध होता है । यों ही व्यवहारनयके आलम्बनसे यथार्थ स्वरूपका परिचय कराया जाता है । तब व्यवहारनयने जो कुछ बनाया है वह वस्तुकी यथार्थता नहीं है किन्तु विवेचनाके बिना यथार्थताका बोध भी नहीं हो सकता । इसी कारणसे व्यवहारनय आदरणीय है और व्यवहारनय का प्रयोग करना श्रेयस्कर भी है । निषेध तो इष बातका किया जा रहा है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है उसे एक लक्ष्य का संकेत समझना चाहिए । ठीक उसी रूपसे, भेदरूपसे वस्तु यहीं पूर्ण है इस तरह न मान लेना चाहिए यों व्यवहार निश्चयका साधक होनेसे आदरणीय है ।

**तस्मादाश्रयणीयः केषाञ्चित् स नयः प्रसङ्गत्वात् ।**

**अपि सविकल्पानामिवन श्रेयो निर्विकल्पबोधवताम् ॥६३६॥**

प्राक् पदवीमें व्यवहारनयकी आश्रयणीयताका प्रतिपादन—व्यवहारनय आदर करने योग्य है अथवा नहीं है इस सम्बन्धमें ये दोनों ही निर्णय हैं । किन्तु २ जीवोंको तो व्यवहारनय आश्रय करने योग्य है । जिस प्रसङ्गमें वे पड़े वे उस प्रसङ्गके

माफिक उनको व्यवहारनय आवश्यक है। अर्थात् जो सविकल्प ज्ञान वाला है ऐसे प्राणियोंके लिए व्यवहारनय आश्रय करने योग्य है, किन्तु निविकल्प बंध वालेके लिए व्यवहारनय हितकारी नहीं है। सविकल्प ज्ञान पूर्वक जो पुरुष निविकल्प ज्ञानमें पहुँच गए हैं अब उन पुरुषोंको व्यवहारनयकी शरण नहीं लेनी होती। जो निविकल्प समाधिभावमें स्थित है, आत्मानुभवका अत्तलीकिंक आनन्दरस ले रहे हैं उनको सकेला होना बुरा है, उनमें तरज्जु आना बुरा है, यों ही समझ लीजिए कि व्यवहारनयका वे आश्रय करने लगे तो आत्माश्रय जैसे वैभवसे हटकर एक दरिद्रतामें लग गए हैं। तो व्यवहारनय किन्हीं पुरुषोंको आश्रय करने योग्य है किन्तु निविकल्प ज्ञानमें ही जो आ गए पुरुषोंको व्यवहारनय करनेके योग्य नहीं है, जैसे एक स्थूल उहाहरण समझिये कोई पुरुष मन्दिरकी दूरी मंजिल पर जा रहा है तो उस पुरुषको ये सीढ़ियाँ आश्रय करना योग्य है या नहीं? ऐसा एक साधारण प्रश्न सामने रखा जाय तो वहाँ एकान्ततः उत्तर कुछ न बन सकेगा। यदि यह कहा जाय कि वे सीढ़ियाँ आलम्बन करनेके योग्य हैं तो इंसका यह अर्थ लगाया जा सकेगा कि किसी भी सीढ़ीको पकड़ कर रह जायें क्योंकि वे तो आश्रय करनेके योग्य हैं? यदि यह उपदेश किया जाय कि सीढ़ियाँ आश्रय करनेके योग्य नहीं हैं तो कोई नीचे खड़ा हुआ कोई आलसी पुरुष बड़े मजेमें इस आज्ञाका पलन कर सकता है। सीढ़ियाँ तो आश्रय करनेके योग्य नहीं हैं ऐसा बताया है बड़े पुरुषोंने तो हम सीढ़ियोंको छुवें ही क्यों? उनपर चढ़े ही क्यों? ऐसा आग्रह करके वह नीचे बैठा ही रहे तो भी वह मन्दिरमें न जा सकेगा। सीढ़ियोंका आलम्बन करनेका एकान्त करे तो भी वह मन्दिरमें न पहुँच पायगा। सीढ़ियाँ आलम्बन करने योग्य ही नहीं हैं ऐसा आग्रह करके दूर रहे तो भी वह मन्दिर न पहुँचेगा। तो करना क्या चाहिए कि जब बिलकुन नीचे हैं तो उन सीढ़ियों का आश्रय करना चाहिए। उनपर चढ़ना चाहिए और जिस सीढ़ी पर चढ़ गए हैं उसको छोड़ न आगली सीढ़ीपर चढ़ना चाहिए। इस तरह आलम्बन की हुई सीढ़ीका परित्याग करते जाना चाहिए। तब मन्दिरमें पहुँचकर प्रभुके दर्शन हो सकते हैं। ऐसे ही यहाँ जाने जिनका अभी वस्तु स्वरूपमें पूरा प्रवेश नहीं है अथवा उस स्वरूप की उपासनाका अध्यास नहीं बन पाया हैं ऐसे पुरुषोंको व्यवहारका आश्रय करना चाहिए, कब तब, जब तक कि वीतरागता और विज्ञान प्रकट न हो जाय। तो निर्णय यह रहा कि व्यवहारनय प्राथमिक पुरुषोंको आलम्बन करने योग्य है, किन्तु निविकल्प समाधिमें ठहरे हुए पुरुषोंको व्यवहारनयका आलम्बन करना योग्य नहीं है। इस तरह परमार्थ तो निश्चयनय है और उसकी प्राप्तिके लिए व्यवहारननका प्रयास है।

ननु च समोहितसिद्धिः किल चैवस्मान्यात्कर्थं न स्यात् ।

विप्रतिपत्तिनिरासोवस्तु विचारश्च निश्चयादिति चेत् ॥६४०॥

निश्चयनयसे ही विवादपरिहार, वस्तुविचार, समीहित सिद्धि न हो जानेके कारणकी जिज्ञासा—अब शङ्काकार पुनः कहता है कि इष्ट गिद्धिके लिए विवादका परिहार करनेके लिए, वस्तुका विचार बनानेके लिए निश्चयनयका आश्रय किया जा रहा है। तो ये सब बातें निश्चयनयसे ही क्यों नहीं मान ली जाती ? निश्चयनयके आलम्बनसे विवाद मिट जायगा। संशय दूर हो जायगा, वस्तुका विचार भी बन जायगा। तो यों निश्चय से सब बातें मान ली जानेपर फिर व्यवहारनयकी आवश्यकता न रहेगी। विवाद परिहार, संशय विनाश वस्तु विचार ये सभी निश्चयनयसे ही हो जायेंगे, इस कारण केवल निश्चय ही मानना चाहिए। व्यवहारनयकी तो बात कहना मिथ्यानय है और अकार्यकारी है। इस प्रकार शङ्काकारने पुनः अपनी शङ्का दोहराई कि सब कुछ हित जब निश्चयनयसे मिलता है तो उपदेश निश्चयनयका ही करना चाहिए, व्यवहारनयका कथन करना तो असङ्गत मालूम होता है।

नैर्व यतोस्ति भेदोऽनिर्वचनीयो नयः स परमार्थः ।  
तस्मातीर्थस्थितये श्रेयानु कश्चित् स वावद्कोपि ॥६४१॥

निश्चयनयकी अनिर्वचनीयताके कारण तीर्थ स्थितिके लिये व्यवहारनयकी हितकारिता—अब उक्त शङ्काका समाधान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि ऊपर जो शङ्का उठाई गई है वह ठीक नहीं है, क्योंकि निश्चयनय और व्यवहारनय इन दोनोंमें भेद है। निश्चयनय तो बचनके अगोचर है, निश्चयनयके द्वारा पदार्थका विवेचन किया ही नहीं जा सकता। इसी कारण धर्म या दर्शनकी स्थिति लिए हुए वस्तु स्वभावमें जानेके लिए बोलने वाला जो व्यवहारनय है सो यह व्यवहारनय हितकारी है। व्यवहारनयको यहाँ बावबूक बतलाया है अर्थात् बोलने वाला, तो बोलने वाला होकर भी व्यवहारनय हितकारी है। क्योंकि इपके ही प्रतापसे धर्म और दर्शनकी स्थिति होती है। निश्चयनय तो एक वस्तुकं सहज स्वभावका वर्णन कराता है। यद्यपि कोई यही करता रहे और कुछ भी न करे, इस स्थितिमें उसका सहज बने ? उसके लिए व्यवहारनय सहयोगी है। यह व्यवहारनय निश्चयनयके तथ्य पर प्रकाश देता है।

ननु निश्चयस्य वाच्यं किमिति यदालम्ब्य वर्चते ज्ञानम् ।  
सर्वविशेषभावेऽत्यन्तभावस्य वै पूरीतत्वात् ॥६४२॥

मर्व विशेषोंका अनालम्बन होनेसे निश्चयनयके अविषयत्व व अभाव की आशंका—शङ्काकार कहता है कि निश्चयनयका वाच्य है क्या ? स्पष्ट बताओ,

जिसका आलम्बन करके ज्ञान किया जा रहा है ? निश्चयनय भी तो एक ज्ञान है और ज्ञान किसीको विषय करता हुआ रहता है तो निश्चयनयमें वह विषय क्या है जिसका आलम्बन करके बने हुए ज्ञानको निश्चयनय कहते हैं । अभी जितना कथन ग्राया है उससे यह विदित हो रहा है कि निश्चयनयका विषय कुछ नहीं है । किन्तु व्यवहारनय जो कुछ कहे उसका निषेध करना ही काम है । तो व्यवहारनयके कथन का निषेध करता जाय इतने मात्रसे निश्चयनयके विषय की पुष्टि तो नहीं होती है । आखिर निश्चयनयने समझा क्या है ? तो निश्चयनयका दह वाच्य बतलाईये ? अब तक तो ऐसा मालूम हुआ कि निश्चयनयका विषय कुछ ही नहीं, अत्यन्ताभाव है निश्चयनयके विषयका और जब विषयका अत्यन्ताभाव है तो निश्चयनयका भी अत्यन्ताभाव हो जायगा । केवल व्यवहारका निषेध करता है निश्चयनय इतना कहने मात्रसे काम न बनेगा । जिसे हितकारी माना जा रहा है ऐसे निश्चयनयका विषय तो कुछ सामने आना चाहिए । अब इस शङ्काका समाधान करते हैं ।

**इदमत्र समाधानं व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम् ।**

**सर्वविकल्पाभावे तदेवनिश्चयनयस्य यद्वाच्यम् ॥६४३॥**

व्यवहारनयके वाच्यनेसे सर्व विकल्पोंको दूर कर देनेपर व्यवहारनय वाच्यकी ही निश्चयनयवाच्यता—उक्त शङ्काका समाधान यह है कि देखिये ! व्यवहारनयका जो कुछ भी वाच्य है, व्यवहारनयने जो कुछ भी प्रतिपादन किया है सो वहाँ सर्व विकल्पोंको दूर हटा लीजिए और सर्व विकल्प दूर होनेपर फिर जो वाच्य रहता है वही निश्चयनयका वाच्य है । निश्चयनयका यथार्थतया वाच्य कीन है उसको केवल आत्माकी कुछ बात ही कहकर कैसे बताया जाय ? बाह्य पदार्थका अथवा भेद का आलम्बन करना ही पड़ेगा । तो वहाँ वह व्यवहारनय बन जायगा । ऐसे ऐसे व्यवहारनयके विकल्प जब नहीं रहे तो जो कुछ उस प्रतिपादनसे बचा वह निश्चयनय का विषय है । यों निश्चयनयका विषय अवाच्य हुआ और व्यवहारनयका विषय वाच्य हुआ । इसी बातको अब एक दृष्टान्त द्वारा पुष्ट कर रहे हैं ।

**अस्त्यत्र च संदप्तिस्तुणाग्निरितिं च यदोष्णं एवाग्निः ।**

**सर्वविकल्पाभावे तत्संस्पर्शादिनाप्यशीतत्वम् ॥६४४॥**

दृष्टान्त द्वारा निश्चयनय वाच्यत्वका पुष्टीकरण—निश्चयनयका वाच्य क्या है इसका परिज्ञान करानेके लिए यह दृष्टान्त दिया जा रहा है जौसे कोई कहे कि तृण अग्नि है, ऐसा कहनेपर भी वह अग्नि है, अग्नि कहते उसे हैं जिसमें उष्ण स्पर्श अधिक हो और उष्णस्पर्शकी तीव्रताके कारण उसके निकट भिड़ा हुआ पदार्थ दग्ध

हो जाय। तृणकी श्रगिन है तब भी श्रगिन ही है, कंडेकी श्रगिन है, तब भी श्रगिन ही है कोयले की श्रगिन है तो वह भी उष्ण श्रगिन है। अब जरा उष्ण श्रगिन से तृणका, कंडेका, कोयले का विकल्प दूर कर दीजिए। तृण श्रगिन है यहाँ तृणका विकल्प दूर कर दिया जाय, केवल श्रगिन को ही दृष्टि में लिया जाय तो वह उष्ण ही प्रतीत होगी विशेषण हटा दिया फिर भी वह आग ही है जो जला देती है। अब यहाँ चिचार करिये—तृणकी आग है, यह कथन क्या यथार्थ है? नहीं है यथार्थ क्योंकि जिस समय तृण आगमय बन गई उस समय तो यह तृण ही न रहा, किन्तु आग ही है और जिस समय आगमय नहीं परिणाम उस समय वह तृण है, आग नहीं है। इसी कारण तृण आदिक विकल्पोंको दूर कर देना ही ठीक है, फिर भी आग है ऐसा प्रतिवोध करने के लिए तृण आदिक का व्यवहार होना आवश्यक है। यही दृष्टान्त निश्चयनय घटित होता है। जो व्यवहारनयका विषय है वह विकल्पात्मक है। अब विकल्पोंको दूर करें और जिसका लक्ष्य किया वही दृष्टि में रहने दिया जाय तो वह निश्चयनयका विषय बन जाता है। जैसे गुण पर्याय बाला द्रव्य है तो कोई पर्याय आदिक भेद निश्चयनयकी दृष्टि में मिथ्या है, क्योंकि निश्चयनयकी दृष्टि में गुणात्मक अखण्ड पिण्ड ही है। उसे तो बचनोंसे नहीं कह सकते। तो इसको समझाने के लिए जो भेद व्यवहार से प्रतिशोधन किया है वह व्यवहारनयका विषय है और उस विकल्प का निषेध करके निश्चयनयका विषय प्रकट होता है। सो व्यवहारनयका निषेध करता है निश्चयनय। इन शब्दोंसे केवल निषेध ही न लेना, केवल आभावात्मक अर्थ न लेना, किन्तु शुद्ध द्रव्य निश्चयनयका विषय है जिसको लक्ष्य करके व्यवहारनयने समझाने का प्रयास किया है।

ननु चैवं परसमयः कर्थं स निश्चयनयावलंबी स्यात् ।  
अविशेषादपि स यथा व्यवहारनयावलंबी यः ॥६४५॥

निश्चयनयावलम्बीको भी मिथ्यादृष्टि कहने के कारणकी जिज्ञासा— यहाँ शङ्खाकार कहता है कि व्यवहारनयका आलम्बन करने वाले को मिथ्या दृष्टि बताया है सो ठीक है, वहाँ तो विषय अनेक है परन्तु निश्चयनयका आलम्बन करने वाला भी अर्थात् केवल निश्चयनयका आग्रह करने वाला भी मिथ्यादृष्टि बताया गया सो वह किस प्रकार? स्थूल रूपसे सभी समझ शक्ति के व्यवहारनय असद्भूतका वर्णन करते हैं तथा सद्भूतमें भी भेद प्रकट करते हैं। सो वस्तु भेदरूप नहीं और असद्भूत ही नहीं तब वस्तुको उस प्रकार कहना व्यवहारनय है तो वह मिथ्या है लेकिन व्यवहारनय तो एक अखण्ड वस्तुपर लक्ष्य कराता है और बचनों द्वारा भी केवल निषेधरूपमें प्रदृष्ट होता है। तो ऐसा निश्चयनयका आवलम्बन करने वाले जीव को मिथ्यादृष्टि कहा गया है। इस शङ्खाके समाधानमें कहते हैं।

सत्यं किन्तु विशेषो भवति स सूक्ष्मो गुरुपदेश्यत्वात् ।

अपि निश्चयनयपक्षादपरः स्वात्मानुभूतिमहिमा स्यात् ॥६४६॥

**निश्चयनयपक्षकी अनादेयताका कारण** पक्षातिक्रान्त स्वात्मानुभूतिकी महिमा—शङ्काकारका कहना उसकी दृष्टिमें सत्य है क्योंकि स्थूलरूपसे परखमें भी यही बात आती है कि व्यवहारनय अनेको विषय करता है । असदभूतको विषय करता है, श्रेद वस्तुमें भेदको प्रक्रिया बनाता है । अतः व्यवहारनयका आलम्बन करनेका अर्थ यह है कि वस्तु जिस प्रकार है उससे विपरीत तत्त्वका आलम्बन किया । अतएव मिथ्या है और उसकी ओर दृष्टि बनाये सो मिथ्यादृष्टि है और निश्चयनय एक अखण्ड वस्तुपर लक्ष्य करता है अतएव उसका विषय एक है और उस एकका आलम्बन जो करता है वह सम्यकदृष्टि होता है, ऐसा कथन भी शाया है । इन बातों से यद्यपि यह बात शङ्काकारकी ठीक जच रही, फिर भी सूक्ष्म दृष्टिसे विचारा जाय तो निश्चयनयसे भी विशेष कोई बात है और वह सूक्ष्म है और वह गुरुजनोंके ही उपदेशके लायक है, उसे बड़े बड़े महर्षिजन उपदेश कर सकते हैं और फिर भी सुनने वाले वचनोंका लक्ष्य रखकर उसका अर्थ स्पष्टरूपसे नहीं समझ सकते । सिवाय स्वात्मानुभूतिके और कोई उपाय नहीं है कि अखण्ड निज तत्त्वका स्पष्ट अनुभवात्मक परिचय हो जाय और उसके स्वरूपको कोई महान् गुरु ही बतला सकता है । यों साधारण वचनों द्वारा उसका कथन भी नहीं हो पाता है । तो निश्चयनयसे भी विशेष परिणामिति है स्वात्मानुभूतिकी । और स्वात्मानुभूतिमें जो अनुभव होता है ऐसे अनुभव वाले पुरुषको सम्यकदृष्टि कहते हैं । निश्चयनय भी एक पक्ष है और वह है यद्यपि अभिज्ञ अखण्ड वस्तुका निकटवर्ती पक्ष, किन्तु जब तक उसका आग्रह है वह भी एक प्रकारसे वस्तुसे अलग पड़ा हुआ है । दोनों पक्षोंसे रहित होकर स्वात्मानुभूतिकी महिमासे यह पुरुष उस तत्त्वको जान सकता है जिसकी प्राप्तिसे सम्यकदृष्टि कहलाता है ।

उभयं णयं विभणिमं जाणाइ णवरं तु समय पञ्चिवद्वो ।

णदु णयपक्खां गिणहदि किञ्चिवि णयपक्खपरिहाणो ॥१॥

इत्युक्तस्त्र दपि सविकल्पत्वात्तथानुभूतेश्च ।

सर्वोपि नयो यावान् परमनयः सच नयाद्लंबी ॥६४७॥

नयपक्षावलम्बीकी परसमयताके कथनका उद्धरण—व्यवहारनयका अवलम्बन करने वालेको मिथ्यादृष्टि कहा गया है । इसमें तो शङ्काकारको विवाद

नहीं। निश्चयनयावलम्बीको मिथ्यादृष्टि कहा है, इस विषयमें शङ्खाकारको विवाद हुआ है। उस विवादका समाधान कुछ ऊपर कहा गया है। उसकी पुष्टिमें समयमार्थ ग्रन्थकी एक गाथा दी गई है जिसका अर्थ यह है कि जो दो प्रकारके नय कहे गए हैं। उन नयोंको सम्यगदृष्टि जानता तो है परन्तु वह किसी भी नय पक्षको ग्रहण नहीं करता, वह नयपक्षसे रहित है, वह अपने सम में ही प्रतिबद्ध है। इस गाथारूप सूत्रसे भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि सम्यगदृष्टि निश्चयनयका भी आलम्बन नहीं करता। हाँ यह बात अवश्य है कि निश्चयनयके विषयपर दृष्टि रखने वाले पुरुषको सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। परन्तु निश्चयनयका पक्षरूप विकल्प तो सम्पर्दर्शन नहीं है इस कारण निश्चयनयके विकल्पका ही आग्रह करने वाला पुरुष सम्यगदृष्टि नहीं किन्तु मिथ्यादृष्टि है। अब दूसरी पद्धतिसे इसका समाधान देखिये। व्यवहारनयको सविकल्प ज्ञान कहा है, इसी तरह निश्चयनयको भी सविकल्प ज्ञान बताया गया है। इस विषयमें पहले स्पष्टरूपसे बता ही दिया गया था कि जितने भी ज्ञान विकल्प हैं वे सब नय हैं और वे अपरमार्थ हैं। तो सविकल्प ज्ञानरूप होनेसे जैसे व्यवहारनय मिथ्या है उसी प्रकार निश्चयनय भी मिथ्या सिद्ध होता है। जितने भी नय हैं सभी परसमय कहलाते हैं। स्वसमयसे बाह्य तो मिथ्या कतलाता है। तब उन नयोंका अवलम्बन करने वाला भी मिथ्यादृष्टि ही सिद्ध हुआ। कब नय समाप्त है? कब नय मिथ्या है? सब समय नय मिथ्या है। कुछ नय मिथ्या है कुछ नय सम्यक हैं। सभी प्रकारके वर्णन हैं और उन सबकी दृष्टियाँ जब परखमें आ जाती हैं तो निर्विवाद यह सब कथन प्रमाणसिद्ध प्रतीत हो जाता है। नयोंका समूह प्रमाण है निरपेक्षनय मिथ्या है, सापेक्ष नय सम्यक है। नयके स्वरूपमात्रसे सभी नय मिथ्या हैं आदि अनेक कथन अनेक स्थलोंमें आते हैं। उन सब समस्याओंका पार नहीं पा सकता है, जो इस गहन नयचक्रके समूहका प्रकाश लिए हुए घूम रहा हो। तो यहाँ तीन बातें समझनी चाहिए व्यवहारनय, निश्चयनय और स्वात्मानुभूति। इसमें साधक साध्यपनेका सम्बन्ध भी है। व्यवहारनय साधक है तो निश्चयनय साध्य है। निश्चयनय साधक है तो स्वात्मानुभूति साध्य है। स्वात्मानुभूतिमें सब समयता है और नयोंमें पर समयता है और विशुद्ध दृष्टि रखते हुए, प्रयोजन ठीक समझते हुए निरखनेपर तो नय भी सम्यक है। इस तरह शिक्षाके लिए यह बात प्रकट होती है कि मनुष्यको कल्याण मार्गमें बढ़नेके लिए व्यवहारनयका सहारा लेकर वस्तु स्वरूपका अध्ययन करना चाहिए और फिर व्यवहारनयका प्रयोजन जानकर दृष्टि निश्चयनके विषयकी ओर उन्मुख करना चाहिए, फिर निश्चयनयके आलम्बनसे अखण्ड वस्तुको निरखना चाहिए और फिर इस विकल्प से भी हटाकर स्वात्मानुभूतिमें आकर वह विशुद्ध निर्विकल्प अनुभव रहे उसका बस यही कल्पणाका सीधा मार्ग है।

स यथा सति सद्विकल्पे भवति स निश्चयनयो निषेधात्मा ।

न विकल्पो न निषेधो भवति चिदात्मानुभूतिमात्रं च ॥६४८॥

अनुभूतिकी विकल्पातिक्रान्तताका निर्देशन इस गाथामें स्वात्मानुभूति का स्वरूप कहा गया पर स्वात्मानुभूति वहाँ है जहाँ कोई विकल्प भी नहीं है । न तो विद्यरूप विकल्प है और न निषेधरूप विकल्प है । सविकल्प ज्ञान होनेपर निश्चयनय में विकल्पका निषेध करते हैं परन्तु निश्चयनयमें भी निषेधरूपका पक्ष रह जाता है । जब यह पक्ष भी शान्त हो जाता है तो वहाँ जो अनुभव है वह आत्माके अनुभव मात्र हैं और उसे ही स्वानुभव कहते हैं । अथवा स्वका अर्थ यहाँ ज्ञान है, क्योंकि आत्मा ज्ञानमात्र है, अर्थात् केवल ज्ञानस्वरूपसे ही निरखा जाय तो आत्माका ठीक परिचय हो जाता । ऐसे ज्ञानमात्र निज आत्मतत्त्वका अनुभव करना सो ज्ञानानुभूति अथवा स्वात्मानुभूति है । ज्ञानमें जब विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप समाया हो, ज्ञान जहाँ विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप मात्र जान रहा हो, उसके साथ इष्ट अनिष्ट विकल्प न हो, ज्ञान ज्ञेयका भेद न हो, मैं की पद्धतिसे यग्ने आपमें भी भेद न किया जा रहा हो, ऐसे अभेद ज्ञानानुभवका आनंद चला जानेकी जो स्थिति हो उसे स्वात्मानुभूति की स्थिति कहते हैं । स्वात्मानुभव ही एक ऐसा विशुद्ध पुरुषार्थ है कि जिसके प्रतापसे यह जीव निर्वाण पदको प्राप्त कर लेता है, ऐसा स्वात्मानुभव जहाँ हो वहाँ सम्यग दर्शन कहलाता है । जब तक व्यवहारनय अथवा निश्चयनयका विकल्प है तब तक वहाँ सम्यगदर्शन नहीं कहा जाता । यद्यपि सम्यगदृष्टि पुरुष भी व्यवहारनय और निश्चयनयकी पद्धतिसे जानते हैं लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव व्यवहारनय और निश्चयनयकी पद्धतिसे जानता है । तब वहाँ नियमपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि व्यवहारनयके विकल्प और निश्चयनयके विकल्प करने वाले जीव भी सम्यगदृष्टि होते हैं और जब केवल मात्र विकल्पके स्वरूपके स्वरूप तक ही कुछ चर्चा चलती है तो वहाँ तो कहमा ही होगा कि यह सम्यगदर्शन नहीं है ।

दृष्टान्तोपि च महिषध्यानाविष्टो यथा हि कोपि नरः ।

महिषोयमहं तस्योपासक इति नयादलम्बी स्यात् ॥६४९॥

चिरम चिरं बा यावत् स एव दैवात् स्वय हि महिषात्मा ।

महिषस्यैकस्य यथा भवनान् महिषानुभूतिमात्रं स्यात् ॥६५०॥

अनुभूतिकी विकल्पातिक्रान्तताका दृष्टान्तपूर्वक समर्थन—उक्त गाथामें स्वानुभूतिका स्वरूप बताया है । स्वानुभूतिकी पूर्व स्थिति क्या होती है और स्वानुभूतिके समय क्या स्थिति होती है उस स्थितिका चित्रण करनेके लिए एक पद्धति रूप का दिग्दर्शन उस दृष्टान्त द्वारा इस गाथामें कराया गया है । जैसे कोई पुरुष भैसाके

ध्यानमें आरूढ़ है, कुछ लोगोंके अमेशास्त्रोंमें भैसाका ध्यान करना, गधेका ध्यान करना आदिक बताया गया है उसके अनुसार कोई पुरुष भैसाका ध्यान करने वैठ गया तो ध्यान करते हुए में यह समझ रहा है कि यह भैसा है और मैं इसकी सेवा करने वाला हूँ मैं ध्यान करने वाला हूँ। पहिले उसको द्वैतका विकल्प होता है, इस प्रकारके विकल्पको लिए हुए जब तक उसका ज्ञान चल रहा है तब तक यों समझिये कि जैसे वह न यक्षा अवश्लभन करने वाला है। अब बारबार भैसा जौसा अपने आपको उपासित करनेके लिए ध्यान करने लगा, और इस तरहसे महिषका ध्यान करने लगे कि उस और एकाग्रचित हो गया। अब योगवश उसकी बुद्धिमें यह न रहा कि यह भैसा है और मैं उसकी उपासना कर रहा हूँ और उस समय वह स्वयं अपने अनुभवमें उपयोगमें महिषरूप बन जाता है, लेकिन उस समय वह स्वयं अपने अनुभवमें, उपयोगमें महिषरूप बन जाता है लेकिन उस समय केवल एक भैसेकी ही अनुभूति करता है, उसे कह सकते हैं कि अब इसको महिषकी अनुभूति हुई है। यहाँ दो स्थितियोंपर दृष्टि कराई गई है कि भैसेका ध्यान करने वाला पुरुष जब तक इस तरहका विकल्प रख रहा है कि यह भैसा है और मैं उसका उपासक हूँ तब तक तो समझिये कि वह विकल्प दूर हो जाता है और केवल अपने आपको भसारूप अनुभव करने लगता है उस ही समय उसके महिषानुभूति हुई यह समझना चाहिए। अब इस अनुभूतिमें उपास्य उपासकका भेद न रहा। यह भैसा है, इसकी उपासना करनी चाहिए यह पूजनेके योग्य है। मैं उपासना करने वाला हूँ, इस प्रकारका अब भेद न रहा। पहले तो भेद था और ध्येय बनाया था महिषको। तो जैसे पहिले ध्येय बनाया था और आप उसका ध्याना बन रहा था अब अनुभूतिके समय ध्याना ध्येयका विकल्प भेद न रहा, किन्तु यह ध्याना स्वयं ही ध्येयरूप बनकर तन्मय हो गया। तो यह पद्धति स्वात्मानुभूतिकी है इसी कारण स्वात्मानुभूतिकी एक बड़ी महिमा गाई गई है। अब उक्त दृष्टान्तके अनुसार प्रकृत दृष्टान्तकी बात कह रहे हैं।

**स्वात्मध्यानाविष्टस्तथेह कश्चिन्नरोपि किल यावत् ।**

**अयमहमात्मा स्वयमिति स्यामनुभविताहमस्य नयपक्षः । ६५१ ।**

**चिरमचिरं वा दैवात् स एव यदि निर्विकल्पश्च स्यात् ।**

**स्वयमात्मेत्यनुभवतात् स्यादियमात्मानुभूतिरिह तावत् । ६५२ ।**

अनुभूतिकी पक्षातिक्रान्तताका दाष्टन्तिमें विवरण—कोई मनुष्य जब अपने आत्माके ध्यानमें आरूढ़ होता है तो ध्यान करते हुए यह विकल्प रहता है कि मैं यह आत्मा हूँ और मैं स्वयं इस आत्माका ध्यान करने वाला हूँ। जैसे कि महिष

का ध्यान करने वाले पुरुषने ध्येयको अलग रखा तो वहाँ यद्यपि अलग अलग दो पदार्थ हैं ध्येयरूप महिष भिन्न है और ध्याता यह पुरुष भिन्न है, परन्तु इस आत्मामें जिस आत्माका ध्यान करना है वह भी स्वयं है और जो ध्यान करने वाला है वह भी स्वयं है लेकिन अभी भेद भावमें पड़ा हुआ है। जो ध्याता बन रहा वह तो एक उपयोग है, ज्ञान है और जिसको ध्येय बनाया जा रहा वह अनन्त शक्त्यात्मक आत्मतत्त्व है। तो ध्याताके ज्ञानके प्रकारके ही कारण अभी यहाँ विकल्प पड़ा हुआ है। यह मैं आत्मा हूँ और मैं इसका ध्यान कर रहा हूँ। तो समझिये ! कि जब तक उसका ऐसा विकल्पात्मक बोध है तब तक उसका नयपक्ष है। है नयपक्ष फिर भी यह पद्धति निरन्तर चलती है—यह मैं ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ। इस प्रकारका ध्यान बराबर करता जा रहा है। तो इसके चिर अभ्याससे धोगवश जब यही आत्मा निर्विकल्प हो जाता है अर्थात् पहले जो विकल्प किया जा रहा था कि मैं उपसक हूँ और यह मैं स्वयं उपास्य हूँ, ऐसा जो विकल्प था उसको दूरकर जब यह आत्मा स्वयं निज आत्मामें तन्मय हो जाता है तो उस समय यह आत्मा स्वात्मानुभव करने लगता है। इस स्थितिमें जब कि ध्याता और ध्येयका विकल्प भेद न हो और जो निर्विकल्प अनुभव है वही स्वात्मानुभूति कहलाती है। यहाँ भी दो स्थितियोंका परिज्ञान करना कि स्वात्मानुभव करने वाले इस पुरुषने पहले तो ध्याता ध्येयका विकल्प रखा था और तब तक यह नयपक्षमें था, जब इसके ध्याता ध्येयका विकल्प भी छूटा और स्वयं निर्विकल्प स्वके अनुभव में आ गया, कोई विकल्प ही न रहा, एक ज्ञान मात्र तत्त्वका ही शुद्ध ज्ञान चलता रहा ऐसी स्थितिको स्वात्मानुभूति कहते हैं। यह है निर्विकल्प स्थिति। इस स्थितिमें ध्यान ध्याता ध्येयका विकल्प नहीं रहता। स्वात्मानुभवमें यह तरङ्ग नहीं है। ध्यान क्या है। ध्याता कौन है, ध्येय कौन है, न ऐसा विकल्प है और न ऐसा कोई जल्प है, प्रकृतमें वह बात फलित रूपसे सङ्खाना चाहिए कि निश्चयनय में भी विकल्प है और वह विकल्प भी जब छूट जाता है तो व्यवहार और निश्चय दोनों विकल्पोंसे रहित होता हुआ यह जीव स्वात्मानुभूति वाला होता है। तो यह स्वात्मानुभूतिरूप विज्ञान निश्चयनयसे बहुत ऊर है और बहुत सूक्ष्म है। इसका बरंगन बड़े महंत ऋषिजन कर पाते हैं। उस प्रानन्दका जिन्हें अनुभव नहीं हुआ वे उसका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते हैं। तो अब यहाँ यह निश्चय कर लेना चाहिए कि जो यह कथन किया गया है कि मात्र व्यवहारनयका आलम्बन करने वाला जैसे मिथ्यादृष्टि है इसी प्रकार मात्र निश्चयनयका आलम्बन करने वाला भी मिथ्यादृष्टि है।

तस्यादृव्यवहार इव प्रकृतो आत्मानुभूतिहेतुः स्यात् ।

अथमहमस्य स्वामी सदवश्यम्भाविनो विकल्पत्वात् ॥६५३॥

व्यवहारनयकी तरह निश्चयनयके पक्षमें भी आत्मानुभूति हेतुताका

**आभाव—** उक्त कथनके सारांशरूपमें इस गाथामें यह बताया जा रहा है कि जब व्यवहारनय भी एक विकल्परूप है और निश्चयं य भी विकल्परूप है तब जैसे व्यवहारनय आत्मानुभूतिका कारण नहीं है, क्योंकि निश्चयनयमें भी यह विकल्प उठ रहा है कि यह आत्मा है और मैं इसका स्मामी हूँ किसी भी प्रकारका विकल्प हो तो वह विकल्प आत्मानुभूतिकी स्थिति नहीं है। हाँ आत्मानुभूतिके लायक भूमिका बनाया ऐसा निश्चयनयका प्रयास है : तब यहाँ तीन स्थितियाँ समझना चाहिए। एक तो व्यवहारनयकी अनेक विकल्प की स्थिति, दूसरी व्यवहारके निषेध करनेरूप निश्चयनयकी विकल्पात्मक स्थिति और तीसरी स्थिति है व्ययहार और निश्चयके विकल्पसे परे होकर निविकल्प निजज्ञान मात्रकी अनुभूति। तो इस स्थलमें यह शिक्षा मिलती है कि हमको व्यवहारनयका आलम्बन लेकर वस्तु स्वरूपका अध्ययन करना चाहिए और उससे निश्चयनयके विषय का संकेत पाकर निश्चयनयके विषयपर दृष्टि रखना चाहिए और ऐसा करते हुएकी स्थितिमें रागवश जब सहज निश्चयनयका विकल्प भी छूटकर निविकल्प स्थिति हो जाय तो वह निविकल्प स्वात्मानुभूति अलौकिक शाश्वत आनन्दको प्रदान करने वाली होती है।

**ननु केवलमिह निश्चयनयपेत्रो यदि विवक्षितो भवति ।  
व्यवहारान्विरपेत्रो भवति तदात्मानुभूतिहेतुः सः ॥६५४॥**

**व्यवहारनयनिरपेक्ष निश्चयनयमें आत्मानुभूति हेतुताकी आशंका—** अब यहाँ शङ्खाकार पुनः कहता है कि यदि हम यहाँपर केवल निश्चयनय पक्षको ही विवक्षित करें अर्थात् व्यवहारनयकी अपेक्षा न रखकर केवल निश्चयनयके विषयपर ही दृष्टि बनायें तो यह स्थिति क्या आत्मानुभूतिका कारण हो जायगी ? शङ्खाकार के चित्तमें आत्मानुभूतिका महत्त्व तो बैठा हुआ है तभी उसके लाभके लिए जिज्ञासा बन रही है और वह स्थिति निविकल्प प्रतीत भी होती है। तो विकल्पका निषेध करने वाले निश्चयनयके उपायसे ऐसी आत्मानुभूतिका मिलना सहज है, ऐसी समझ भी उसकी बन रही है। जिस आधार पर वे यहाँ अपनी जिज्ञासा रख रहे हैं कि व्यवहारसे निरपेक्ष होकर यदि केवल निश्चयपक्ष ही विवक्षित रखा जाय तो भी क्या आत्मानुभवका कारण हो जायगा ? अब इस जिज्ञासाके समाधानमें कहते हैं।

**नैवमसंभवदोषाद्यतो न कर्श्चन्ययो हि निरपेक्षः ।  
सति च विद्यौप्रतिषेधः पूर्तिषेधे सति विधेः पूर्सिद्धत्वात् ॥६५५॥**  
नयोंमें निरपेक्षता न होनेसे उक्त आशंकाका अनवकाश—उक्त गाथामें

बताई हुई जिज्ञासाका समाधान दिया जा रहा है कि शङ्खाकारने जो पूछा है कि व्यवहारनयसे निरपेक्ष होता हुआ निश्चयनयका पक्ष आत्मानुभूतिका कारण हो सकेगा क्या ? तो उसकी शङ्खा यों ठीक नहीं है कि निरपेक्ष पद्धतिसे नयोंका प्रयोग करके आत्मद्वितीय बात निकाले तो वह असम्भव है । इसका कारण यह है कि कोई भी नय निरपेक्ष नहीं हुआ करता । यदि निरपेक्ष विधिसे नयका प्रयोग किया जाय तो वह मिथ्यानय होगा, नयाभास होगा । यदि सम्यक पद्धतिसे नयोंका प्रयोग हो तो वह प्रयोग सापेक्ष ही हो सकेगा । देखिये ! विधिके होनेपर प्रतिषेधका होना भी अवश्यं-भावी है । जहाँ विधि है वहाँ विधि है, जहाँ प्रतिषेध होगा वहाँ विधि है । नय तो वस्तुके किसी विशेष अंशको विषय करने वाला होना है, इस कारणसे नय एक विवक्षित अंशका ही विवेचन करता है, तो विवक्षित अंशका विवेचन करता हुआ दूसरे अंशकी अपेक्षा न रखे तो वह न नयज्ञान सम्यक न होगा । उसे नय ही न कह सकेंगे । तो जब व्यवहारनयका प्रयोग किया जा रहा है तो व्यवहारनयमें तो विधि विषय है । तो मुख्यतासे तो विधिका कथन हो रहा है । वहाँ निश्चयनयकी अपेक्षा रखता हुआ ज्ञानी व्यवहारनयका प्रयोग कर रहा है और जब प्रतिषेधकी विवक्षा की जा रही हो तो मुख्य तो प्रतिषेध विषय है पर प्रतिषेधका बोध करने वाला ज्ञानी विधिकी भी अपेक्षा कर रहा है, इस कारण व्यवहारनय और निश्चयनय इन दोनोंमें परस्पर सापेक्षता है, अतः निरपेक्षता बताकर नयको आत्मानुभूतिका कारण बताना सज्जन नहीं है ।

**ननु च व्यवहारनयो भवति यथाऽनेक एव सांशल्त्वात् ।**

**अपि निश्चयो नयः किल तद्वदनेकोऽथ चैककस्थिति चेत् ॥६५६॥**

व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी एक एक मिलाकर अनेक मान लेनेकी आशंका—यहाँ शङ्खाकार कहता है कि व्यवहारनय अनेक हैं क्योंकि वे अंशसहित हैं, ऐसा जो बताया है वह ठीक है । शब्द यह भी देखिये कि जैसे व्यवहारनय अनेक हैं यों ही निश्चयनय भी तो एक एक मिलाकर अनेक बन जायेंगे । तो निश्चयनयको भी अनेक स्वीकार किए जानेमें क्या दोष है ? तब व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनय भी अनेक सिद्ध हो जाते हैं । जैसे व्यवहारनय विकल्पात्मक है इसी प्रकार निश्चयनय भी विकल्पात्मक है, यह तो माना ही गया है । व्यवहारनयमें विधिका विकल्प है तो निश्चयनयमें निषेधका विकल्प है । तो जैसे विकल्पात्मकताके रूपसे भी व्यवहार और निश्चयनय समान हैं इसी प्रकार अनेकात्मकताके रूपसे भी व्यवहार और निश्चय समान होंगे । और भी परखिये ! व्यवहारनय वस्तुके अंशको ग्रहण करता है, निश्चयनय भी वस्तुके अंशको ग्रहण करता है । तो अंशग्राह्यता होनेसे जैसे दोनों नय समान हैं ऐसे ही दोनों नय अनेकरूप भी बनकर समान हो जायें तथा

निश्चयनय पक्षग्राही है और व्यवहारनय भी पक्षग्राही है। तो पक्षग्राहाताकी हृष्टिसे जैसे दोनों नय समान हैं, उसी प्रकार अनेकरूपतासे भी दोनोंकी समानता कहियेगो। तो यों व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी अनेक मान लिया जाना चाहिए। औब इस शङ्खाका समाधान करते हैं।

**नैर्व यतोस्त्यनेको नैकः प्रथमोप्यनन्तधर्मत्वात् ।**

**न तथेति लक्षणत्वादस्त्येको निश्चयो हि नानेकः ॥ ६५७ ॥**

न तथेति लक्षण होनेसे निश्चयनयमें अनेकताकी ग्रनापत्ति—  
उक्त शङ्खाके समाधानमें कहते हैं कि शङ्खाकारका यह भाव कि जैसे व्यवहारनय सांचा होनेसे अनेक है, इसी प्रकार निश्चयनय भी एक एक मिलकर अनेक होजायगा। यह बात थों सङ्घत नहीं है कि व्यवहारनय तो अनन्तधर्मात्मक है, उसमें अनेक वित्रियां पड़ी हुई हैं इस कारण व्यवहारनय अनेक हैं। परन्तु निश्चयनय अनेक नहीं है, क्योंकि निश्चयनयका लक्षण न तथा अर्थात् जैसा व्यवहारनय कहता है वैसा वस्तुतः नहीं है। इस तरह निषेध निश्चयात्मकका विषय है और निषेधमें आता है अभाव तो अभाव सब एक रूप है इस कारण कितने ही घर्मोंके बिवेचन क्यों न किए जायें, जब निश्चयनयके द्वारा उन सबका निषेध किया जा रहा है तो निषेध करना मात्र निश्चयनयका कार्य हुआ इस कारणसे निश्चयनय अनेक नहीं हो सकता किन्तु दह एक है। सर्व प्रकारकी व्यवहार विविधेयांका निषेध भी एक है और प्रत्येक पदार्थ के सम्बन्धमें जो निश्चयनय आता है वह सब निषेधलूप है। तो सबका निषेध जोड़कर भी कहीं निषेधोंकी संख्या बढ़ नहीं जाती। अतः निषेध विषय एक है तथा निषेध करके जो तत्त्व लक्ष्यमें लिया गया है या जिस तत्त्वको लक्ष्यमें लक्षते हुए निषेध किया जा रहा है व्यवहारका वह विषय भी एक अखण्ड है, इस कारण निश्चयनय को अनेक नहीं कह सकते।

**संदृष्टिः कनकत्वं ताम्रोपाधेनिवृत्तिं याद्क् ।**

**अपरं तदपरमिह वा रुक्मोपाधेनिवृत्तिवस्ताद्क् ॥६५८॥**

दृष्टान्त पूर्वक निश्चयनयकी एकताका प्रतिपादन—उक्त समाधानमें यह कहा गया है कि निश्चयनय एक है, इसका कारण इस गाथामें बताया जा रहा है और उसके विवरणके लिए दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे किसी सोनेमें ताँबा मिला है, किसी सोनेमें चाँदी मिली है, किसी सोनेमें ग्रन्थ धातु मिली है, जब उस उपाधिको दूर कर दिया जाता है अर्थात् प्रयोग द्वारा ताँबा, चाँदी आदिको उस सोनासे अलग कर दिया जाता है तो हुआ क्या वहाँ? उस मिश्रित धातुकी तो निवृत्ति हुई

और खालिस स्वर्ण रह गया । तो जैसे सोनेके डलेमें चाँदीका सम्बन्ध बना है उसे प्रयोग विधि से अगर अलग कर दिया तो चाँदी उपाधिकी निवृत्ति हो गई । उस उपाधिकी निवृत्ति होनेसे वहाँ स्वर्णत्व शुद्ध प्रकट हो गया । तो वहाँ निवृत्तिमें भेद नहीं है । और जो प्रकट हुआ है उसमें भेद नहीं । सोना तांबेकी उपाधिकी निवृत्तसे जिस प्रकार है उस ही प्रकार चाँदीकी उपाधि दूर होनेसे सोनेमें जो तांबा, पीतल, चाँदी आदिक उपाधियाँ हैं वे उपाधियाँ तो अनेक हैं परन्तु उनका अभाव होना अनेक नहीं है । अभाव सदभावात्मक होता है । उन सब उपाधियोंका अभाव हुआ तो सदभाव क्या मिला ? केवल सोना । तो किसी भी उपाधिका अभाव च्यों न हो, वह एक अभाव रहेगा, अर्थात् वस्तुका शुद्ध सदभाव रहेगा । प्रत्येक उपाधिकी निवृत्तिमें स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहेगा, इसी प्रकार समझ लेना चाहिए कि किसी वस्तुके स्वरूपका वर्णन करनेके लिए व्यवहारनयका प्रयोग किया गया तो उस व्यवहारनयमें अनेक प्रकारसे भेदका वर्णन होगा । तो वह भेद कथन तो नाना रूपोंसे है अतएव व्यवहार अनेक है । पर भेदकी निवृत्ति, भेदका निषेध तो एक निषेधात्मक है और उसका निषेध करके जो लक्ष्यमें रहा है वह भी एक रूप है इस कारणसे निश्चयनयको अनेक नहीं कहा जा सकता । अनेक तो व्यवहारनय ही हो सकेगा ।

**एतेन हतास्ते ये स्वात्मपूजापराधत्तः केचित् ।**

**अप्येकनिश्चयनयमनेकमिति सेवयन्ति यथा ॥६५६॥**

निश्चयनयके अनेकत्वके प्रतिपादनकी असंगतता—उक्त कथनसे उन दोनोंका यह आशय खण्डित हो जाता है जो पुरुष अपने ज्ञानके दोषसे निश्चयनयको अनेक समझता है । यद्यपि अपेक्षा विधि से निश्चयनयके भी अनेक भेद किए गए हैं, लेकिन निश्चयनय इस रूप रहे ऐसा उन सबमें नहीं पाया जाता । स्वात्मित वर्णनसे निश्चयनयका लक्षण उन अनेक प्रकारके निश्चयनयोंमें घटित हो जाता है, पर निश्चयनय ही रहे कभी वह व्यवहारनयका रूप न ले सके ऐसी बात बताई गई सर्व निश्चयनयके भेदमें नहीं है, किन्तु एक परम शुद्ध निश्चयनयमें ही है । निश्चयनय भी अन्तर्दृष्टिके मिलनेपर व्यवहारनय बन जाता है । इसी लक्ष्यको लेकर यह बात कही जा रही है कि जो कभी व्यवहारका रूप ही न बिगड़ सके ऐसा निश्चयनय अनेक नहीं होता, किन्तु वह एक है । जो निश्चयनयको अनेक समझते हैं उन्हें वस्तुके अखण्ड तत्त्वका परिज्ञान नहीं है । निश्चयनयके अनेक भेद करके भी इकना यदि बोध रहे कि यह कभी व्यवहारनय न बन सकेगा । निश्चयनय ही रहेगा और यह व्यवहार बन जायगा, यह सदा निश्चयरूप न रहेगा । ऐसा परिज्ञान हो तब तो वहाँ बोध ठीक है लेकिन निश्चयनय ही है और अनेक प्रकारके हैं ऐसा परिचय वस्तु स्वरूप के अनुरूप नहीं है ।

शुद्धद्रव्यार्थिक इति स्यादेकः शुद्धनिश्चयो नाम ।

अपरोऽशुद्धद्रव्यार्थिक इति तदशुद्धनिश्चयो नाम ॥ ६६० ॥

इत्यादिकाश्व वहवो भेदा निश्चयनयस्य यस्य मते ।

सहि मिथ्यादृष्टित्वात् सर्वज्ञाज्ञानमानितो नियमात् ॥ ६६१ ॥

निश्चयनयके भेदोंके कथनकी मिथ्यारूपता कोई लोग निश्चयनयके इस प्रकार अनेक भेद करते हैं । जोसे एक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय व शुद्ध निश्चयनय कहलाता है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका अर्थ किया जाता है उपाधिरहित शुद्ध द्रव्य जिस नय का विषय है वह आशयमें यद्यपि शुद्ध द्रव्यको विषय किया गया है किन्तु शुद्ध निर्मल पर्याप्ति परिणत शुद्ध द्रव्यको देखा है तो वहाँ अभेद न रहा, इस कारण निश्चयनय के विशुद्ध लक्षणका अवकाश न रहा फिर भी निश्चयनय कहा जा रहा है यद्यपि स्वाक्षित वर्णन किया जा रहा है अर्थात् किसी भी पर व्याधका उपचार सम्बन्ध लेकर वर्णन नहीं है उस ही द्रव्यको उस ही द्रव्यमें उसी शुद्धता बताई जा रही है अतएव निश्चयनयका लक्षण घटित हो गया, किन्तु जो निश्चयनय कभी व्यवहार न बन सके इस प्रकारके निश्चयनयका लक्षण नहीं गया, फिर भी भेद कर रहे हैं और निश्चयनयको अनेक बता रहे हैं । कोई पुरुष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयको अशुद्ध निश्चयनय कहता है । इस दृष्टिमें क्रोधादिक विकार परिणत द्रव्यको विषय किया गया है । यहाँ भी वर्णन स्वाक्षित है । कर्मसे विकार नहीं आया, कर्मका विकार नहीं है आदिक रूपसे परका निषेध है, परका आश्रय नहीं लिया गया है । स्वयंके द्रव्यमें स्वयंकी बात कही जा रही है । चाहे वह विकृत भी है अतएव निश्चय नयका सामान्य लक्षण घटित हो गया किन्तु जो निश्चयनय कभी व्यवहारका रूप न पकड़ सके वह अभेद वाला लक्षण नहीं गया, फिर भी इसे निश्चयनयकदा जारहा है और उसके अनेक भेद किए जा रहे हैं । इसी प्रकार और भी बहुतसे भेद जिनके मरमें है उनका आशय निश्चयनयके परम लक्षणकी दृष्टिसे मिथ्या है और वह सर्वज्ञ की आज्ञाका उल्लंघन करने वाला है । निश्चयनयके वास्तवमें शुद्ध अशुद्ध आदिक कोई भेद नहीं होते, यह तो केवल निषेधात्मक है फिर भी उसके कोई भेद करे तो सर्वज्ञकी आज्ञाका उल्लंघन करने वाला है । अतएव उसकी दृष्टि मिथ्या है । निश्चय को स्वसमयकी अपेक्षासे निरखनेपर शुद्ध अशुद्ध आदिक भेद न होंगे, किन्तु ये सब भेद व्यावहारनयमें गमित होंगे । क्रोधादिक भाव अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे आत्माके हैं, यह कथन यद्यपि असत्य नहीं है तो भी याहाँ भेद आ गया इस कारणसे निश्चयनय नहीं है । यह निश्चयनयकी प्रकृति लक्षणकी दृष्टिसे निश्चयनयसे बहिभूत है, व्यवहारनयमें गमित । इसी प्रकार आत्माके ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं यें भेद सापेक्ष

कल्पना भी अशुद्ध द्वयार्थिकनयसे बनाई गई है अथवा रागादिक भावोंका कर्ता जीव है, यह भी अशुद्ध निश्चयनयसे कहा गया है। तो युं कि स्वाश्रित वर्णन किए। जा रहा इस कारण निश्चयनय भले ही इसमें माना जाय, लेकिन भेद हटनेसे यह सब व्यवहारनयमें गम्भित हो जाता है। यें निश्चयनयकी प्रकृतिसे यह बहिर्भूत है। अतएव यह कोई भी निश्चयनय वास्तवमें निश्चयनय नहीं है किन्तु व्यवहारनय है। यें निश्चयनय अनेक नहीं हुआ करते।

**इदमत्र तु तात्पर्यमधिगन्तव्यं चिदादि यद्वस्तु ।**

**व्यवहारनिश्चयाभ्यामविरुद्धं यथात्मशुद्ध्यर्थम् ॥ ६६२ ॥**

व्यवहारनय व निश्चयनय द्वारा अविशुद्ध रीतिसे परिज्ञात जीवादि पदार्थोंकी आत्मशुद्धिके लिये उपयुक्तता—नयोंका यहां तक कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और जिस पद्धतिसे वर्णन किया गया है उस पद्धतिसे हमको यह आवेदा मिलता है कि यहाँ इन सब वर्णनोंका यह तात्पर्य जानना कि जीवादिक जो तत्त्व हैं, पदार्थ हैं वे आत्मशुद्धिके लिए तभी उपयुक्त हो सकते हैं जबकि ये सब पदार्थ व्यवहारनय और निश्चयनयके द्वारा अविशुद्ध रीतिसे जाने जाते हैं। व्यवहारनयसे समझा निश्चयनयकी और जानेके लिए और जिस भेद पद्धतिसे समझा वह भेद मिटाने के लिए। निश्चयनयने समझा निश्चयनयका विकल्प भी मेटकर निर्विकल्प अनुभूति पानेके लिए। तो इन नयोंसे हम जो परिज्ञान करते हैं उसका सही-सही प्रयोजन भी हमारी दृष्टिमें रहे तो उससे हम आत्महितकी साधना सहज ही कर सकते हैं और आत्मसाधनाके लिए यह नयोंका परिचय होना और सही पद्धतिसे नयोंका प्रयोग करना आवश्यक था, इस कारण यहाँ इन सब नयोंका वर्णन किया गया है।

**अपि निश्चयस्य नियतं हेतुः सामान्यमात्रमिह वस्तु ।**

**फलमात्मसिद्धिः स्यात् कर्षकलंकावमुक्तबोधात्मा ॥ ६३३ ॥**

निश्चयनयके विषय और फलका प्रतिपादन—निश्चयनयका कारण क्या है? और निश्चयनयका फल क्या है? अर्थात् निश्चयनयके प्रयोगसे आत्माकी क्या स्थिति बनती है? इन सब बातोंका वर्णन इस गाथामें किया गया है। निश्चयनयका नियत हेतु सामान्य मात्र वस्तु है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। उसमें सामान्यतत्त्व को मुख्य लक्ष्यमें लेकर जो एक अभेद दृष्टि बनती है वह अभेद दृष्टि यह जता रही है कि ऐसी दृष्टि होनेका कारण है सामान्य मात्र वस्तु। तो सामान्यमात्र वस्तुके विषय करने वाले निश्चयनयके प्रयोगसे फल क्या मिलता है? वह फल है आत्मशुद्धि! आत्माका अखण्ड सामान्य स्वरूप जानें। उस अवगममें विकल्प टूटकर निर्विकल्पता

आनेका श्वसर है। तो उसका फल इस प्रकार निर्विकल्प आत्मतत्त्वकी अनुभूति है। यों निश्चयनयसे वस्तुका बोध करनेपर यह आत्मा स्वात्मानुभूतिमें प्रवेश करता है और स्वात्मानुभूतिकी निरन्तरतासे यह आत्मा सर्व कर्म कलङ्कोंसे मुक्त परिपूर्ण ज्ञानानन्दमय हो जाता है।

